यह अन्तर्यात्रा है आत्मा की। यह यात्रा है स्वयं को जानने की, पहचानने की। यह यात्रा है गतिहीन। यह यात्रा है अंदर के अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने की। यह यात्रा है प्रत्येक जीव की, जो वो जन्मों से कर रहा है। मिलेगी मंजिल उसे अनंत असीम प्रकाश के रूप में। रहेगा साथ उसे ईश्वर का हर क्षण, हर पल। वह ईश्वर जो उसके अंदर ही है। वह ईश्वर जो उसके हृदय कमल में विराजता है।

— स्वामी चिदानन्द की शिक्षाओं से

सहकारी मुद्रणालय एवं प्रकाशन संस्थान मर्यादित, सेक्टर–10, भिलाई से मुद्रित

मेरी अध्यात्मिक यात्रा

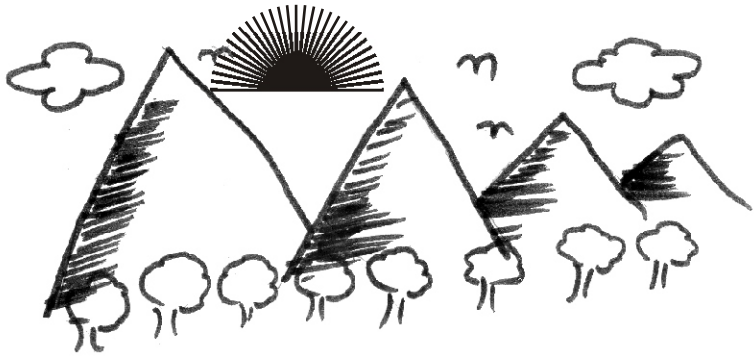

प्रीति अग्रवाल

अध्यात्म मार्ग है बुराई से अच्छाई की ओर जाने का ।
अध्यात्म का मार्ग है झूठ से सच्चाई की ओर जाने का ।
अध्यात्म का मार्ग है बेईमानी से ईमानदारी की ओर जाने का।
अध्यात्म का मार्ग है संग्रह से अपरिग्रह की ओर जाने का ।
अध्यात्म का मार्ग है भोग विलास से योग की ओर जाने का ।
अध्यात्म का मार्ग है दुःख से अनन्त सुख की ओर जाने का ।
अध्यात्म का मार्ग है पशुत्व से ईश्वरत्व की ओर जाने का ।
ईश्वर को पसंद हैं सच्चाई, ईमानदारी और नेकी के पुष्प ।
ईश्वर को पसंद है निडरता, साफगोई और सादगी के पुष्प ।
मंहगे उपहारों से, वह अंदर का ईश्वर पसन्न होता नहीं ।
बाहरी दिखावे से, वह अंर का ईश्वर प्रसन्न होता नहीं ।
केवल कर्मकांड से, वह अंदर का ईश्वर प्रसन्न होता नहीं ।
ईश्वर को चाहिए सेवा, प्यार, दान, दया और करुणा ।
अंदर की दया और करुणा से वह ईश्वर शीघ्र प्रसन्न हो जाता है ।
निःस्वार्थ सेवा से वह ईश्वर शीघ्र प्रसन्न हो जाता है ।
अनजानों को अपनी ही तरह प्यार करने से वह ईश्वर शीघ्र प्रसन्न हो जाता है ।
गरीबों, वृद्धों और जरूरतमंदों को दान देने से वह ईश्वर शीघ्र प्रसन्न हो जाता है ।
यह सब इतना सरल ! जितनी अधिक सेवा, उतनी अधिक कृपा ।
यही उस ईश्वर का विधान ! चाहो तो आजमा कर देख लो ।

जब हृदय की समस्त कामनाएँ होंगी समाप्त, वह अनुभव आएगा जिसमें मिलेगी असीम सुख, शांति और आंतरिक प्रसन्नता। आदिकाल से संत ये कह रहे, गा रहे। ए मानव जाग ! अपने जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त कर। तू पृथ्वी पर आया है प्रकाश फैलाने। तू पृथ्वी पर आया है खुशियाँ बिखेरने। क्या रखा है भोग, विलास और वासनाओं में ? ये तुझे डुबाएँगी और अपने अंदर के ईश्वर से दूर ले जाएँगी। कैसे पाएगा तू सुख ? कैसे पाएगा तू आनन्द ? दुःख चिन्ता ही होगी तेरी सम्पत्ति।

संत्संग प्रेमियों के लिये :

श्री स्वामी सत्यानंद के सत्संग और मेरे अन्य कई लेखों के लिए मेरे वेबसाइट पर लॉगऑन करिए। आप मुझे संदेश भी ब्लॉग के द्वारा भेज सकते हैं।

- http://gyanayagya.weebly.com
- http://pritiyogo.blogspot.com

ॐ

यह पुस्तिका परम गुरु स्वामी शिवानन्द की दिव्य प्रेरणा और परमहंस स्वामी सत्यानंद के असीम अनुग्रह की परिणति है। परमहंस स्वामी निरजंनानंद सरस्वती इस लेखन का मार्गदर्शन कर रहे हैं। परम गुरु स्वामी शिवानंद के ज्ञानयज्ञ की यह 12वीं कड़ी है भिलाई नगर में जिसका मुख्य उद्देश्य है अध्यात्मिक ज्ञान का निःशुल्क वितरण लोक स्वास्थ्य एवं लोक कल्याण के लिए। इस पुस्तिका का वितरण डाक से अथवा अनेक भक्तों के माध्यम से देश विदेश में किया जा रहा है। परमगुरु स्वामी शिवानन्द के ऋषिकेश आश्रम के पुस्तकालय में भी इन पुस्तिकाओं को रखा गया है। देश–विदेश के अन्य अनेक पुस्तकालयों में भी इन पुस्तिकाओं को रखा गया है। इंटरनेट पर भी इन पुस्तिकाओं को देश विदेश में नियमित रूप में भेजा जा रहा है।

''ज्ञान का वितरण सर्वोत्तम सेवा है। ज्ञान के वितरण से समस्त दुर्गुणों का निराकरण सम्भव है''–परमगुरु स्वामी शिवानन्द

''ज्ञानयज्ञ द्रव्य यज्ञ से अत्यन्त श्रेष्ठ है'' (गीता IV, 33)

''अध्यात्मिक ज्ञानदान का पुण्य दूसरे दान के पुण्य से 16 गुणा अधिक है।'' महर्षि वेदव्यास (श्री मदभागवत्)

इस ज्ञानयज्ञ में सक्रिय भाग लेने का एक सुअवसर

एक अपील

इस पुस्तिका में प्रकाशनार्थ विज्ञापन स्वीकृत है। जानकारी लिखकर प्राप्त करें।

इस पुस्तिका की 1000 प्रतियाँ छपवाने में लगभग 20,000 रुपये तक का खर्च आ रहा है। दानदाताओं से प्रार्थना है कि वे अपना सहयोग दें और दान की राशि मनीआर्डर, एकाऊंट पेयी चेक अथवा ड्राफ्ट के द्वारा निम्नलिखित पते पर भेजें।

प्रीति अग्रवाल
क्वाटर नं.2ए,सड़क–24,सेक्टर–9,
भिलाई–490009
जिला–दुर्ग, छत्तीसगढ़, भारत

ॐ

This booklet is being written by divine inspiration of Param Guru Swami Sivananda and infinite blessings of paramhansa Swami Satyananda Saraswati. Paramhansa Swami NiranJanananda Saraswati is guiding this writing. This is the 12th booklet of Jnana Yajna (Gyana Yagya) series of Param Guru Swami Sivananda in Steel City of Bhilai. The main aim of publishing these booklet is to disseminate spiritual knowledge for public health and public welfare. For paving the spiritual development of common man, this booklet is being distributed free of cost all over the world through various devotees by hand, post and internet regularly. These booklets are being kept by various libraries all over the world. A set of these booklets is being kept in Sivananda Ashram, Rishikesh. Live "Dissemination of spiritual knowledge ensures eradication of all evil qualities." Param Guru Swami Sivananda.

"Gyana Yagya is much better than Dravaya Yagya (GeetaIV, 33)

"The punya (merit) of dissemination of spiritual knowledge is 16 times greater than punya of other charities." (Sri Mad Bhagvat, Maharishi Ved Vyas)

An opportunity to take an active part in this Gyana Yagya.

AN APPEAL

Advertisements are accepted for publishing in this booklet. To publish 1000 copies of one booklet approximately Rs. 20,000 is required. I request donors to contribute generously for this noble mission.
Please address all correspondence and donations by draft, money order or account payee cheque to the following address :

PRITI AGGRAWAL,
Qr. 2A, Street 24, Sector-9,
Bhilai 490009
Distt. Durg. Chhattisgarh. INDIA

मेरी अध्यात्मिक यात्रा

(परमगुरु श्री स्वामी शिवानंद के चरण कमलों में सादर समर्पित)

प्रथम संस्करण : 2009

(1000 प्रति ज्ञान यज्ञ हेतु निःशुल्क वितरणार्थ)

आभार

स्व. श्री मनोहर लाल अग्रवाल जी की दसवीं पुण्यतिथि पर इस पुस्तक के प्रकाशन की सेवा मुख्यतः उनके पौत्र श्रीमान अभिनव अग्रवाल द्वारा की गई है।

अन्य दान दाताओं की भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया इस परम पुनीत ज्ञानयज्ञ में। परमपूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द का अनुग्रह एवं भगवत्–कृपा सब दानदाताओं पर सदा बनी रहे। इन्हें स्वास्थ्य, सुख–शांति एवं दीर्घायु प्राप्त हो तथा इनकी अध्यात्मिक उन्नति हो।

– प्रीति अग्रवाल –

प्रस्तावना

कैसी हैं ये अध्यात्मिक शक्तियाँ ? कैसी है यह गुरु भक्ति ? दूर बैठे ही गुरु सब कुछ जाने ! दूर बैठे ही गुरु शक्ति भेजे ।

गुरु की भक्ति में ही है समस्त शक्ति । केवल और केवल गुरु की आज्ञा मानने में ही सर्वकल्याण शिष्य का क्योंकि गुरु ही ईश्वर शिष्य का ।

शिष्य की श्रद्धा गर दृढ़ होगी, तो गुरु कृपा अवश्य ही शिष्य को बहुतायत में मिलेगी ।

गुरु कृपा तो हर क्षण बरसती है । केवल शिष्य की पात्रता ही उसकी ग्राह्य शक्ति को बढ़ाती है।

जो शिष्य हर पल गुरु से जुड़ा रहता है, वह अवश्य ही गुरु का अनुग्रह प्राप्त करता है ।

जो शिष्य बिना दिखावे के गुरु का काम करता है, वह ही गुरु का प्रिय होता है।

झूठे व्यवहार से शिष्य जग को धोखा दे सकता है परन्तु गुरु तो उसके अंदर का मल देख सकता है ।

धोता है उसके अंदर क मल, कभी डाँट कर कभी परीक्षाएँ लेकर ।

जो शिष्य गुरु पर पूर्ण विश्वास करता है वही गुरु का प्यारा बनता है ।

नहीं डिगता है जो गुरु के परीक्षा लेने पर । नहीं फूलता है जो गुरु के प्रशंसा करने पर ।

वह शिष्य अवश्य ही प्रगति करता है । गुरु कृपा का सच्चा अधिकारी बनता है ।

गुरु की शक्ति प्राप्त करता है और गुरु कृपा के सागर में ही दिन–रात डूबता उतरता है ।

गुरु बनाता है माध्यम उसको अपना और अनेक अद्‌भुत कार्य उसके द्वारा सम्पन्न कराता है।

बनता है शिष्य गुरु की शक्तियों से एक वृहद् ऊर्जा का केन्द्र और जग में गुरु का सन्देश जन–जन तक पहुँचाता है ।

बनता है वह एक सन्देश वाहक, स्वामी विवेकानंद की भाँति अपने देश को गौरव दिलवाता है।

भरता है प्रत्येक का मन असीम सुख और शांति से।

स्वयं भी अनन्त सुख शांति और प्रसन्नता प्राप्त करता है ।

अपने साथ–साथ अनेकों का भविष्य उज्ज्वल बनाता है ।

दिखाता है एक नूतन राह उनको । जन–जन के हृदय को राहत पहुँचाता है ।

बनता है वह दूत प्रभु का इस धरा पर क्योंकि हर मानव में वह उसी का रूप देख पाता है ।

होता है हर मानव उसका बन्धु । विश्व बन्धुत्व का ही संदेश वह फैलाता है ।

अपने व्यवहार से ही वह अपने गुरु की उदारता का चित्रण करता है क्योंकि वह गुरु का ही प्रतिनिधि होता है ।

– प्रीति अग्रवाल

विषय सूची

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ क्र.
1.	संत हृदय	01
2.	एक सद्गुरु कैसा होता है ?	02
3.	दुनिया में तीर्थ कहाँ ?	03
4.	एक सद्गुरु की महिमा	04
5.	एक शिष्य के हार्दिक उद्गार	06
6.	गुरु आज्ञा और गुरु कृपा	07
7.	संतों का आगमन	08
8	मेरे गुरु की कृपा	08
9	मेरे परम गुरु – श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती	09
10	मेरे गुरु–स्वामी देवशंकरानंद –एक संस्मरण	10
11	मेरे गुरु–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती	16
12	स्वामी चिदानन्द मेरे जीवन में कैसे आए ?	17
13	आखिर कर्म है क्या ?	17
14	मैं स्वयं से पूछती हूँ, "मैं कौन हूँ ?"	18
15	यह मन !	20
16	देखती हूँ अपने मन को	20
17	आखिर मैं क्यों फैशन के पीछे भागूँ ?	22
18	मेरा मन–एक झलक	23
19	यह देहाभिमान !	24
20	अहंकार–एक दानव	25
21	यह इच्छा !	27
22	यह अज्ञान !	28
23	यह बाधा !	28
24	त्याग	29
25	मानसिक वैराग्य	30
26	ध्यान	31
27	एक आवाहन साधना सौंदर्य लहरी की	33
28	प्राण विद्या	34
29	ध्यान क्यों और कैसे ?	34
30	योग निद्रा के चमत्कार	37
31	एक व्यस्त गृहस्थ के लिए सरल साधना	39
32	पुरुषार्थ और साधना	40
33	क्रोध और ध्यान	41
34	चेतना का स्तर	42
35	मेरा मन–मेरी शक्ति	43
36	मेरी शल्य चिकित्सा	44
37	मन की दिशा	45
38	मेरी अध्यात्मिक यात्रा के मुख्य पड़ाव	46
39	साधना में विशेष तिथियों का महत्व	50
40	यह है अध्यात्म	51
41	अध्यात्म की राह	52
42	कितना कँटीला है यह पथ अध्यात्म का !	53
43	संघर्ष और प्रगति	54
44	एक नए मन का निर्माण	55
45	अध्यात्म की परिणति	56
46	क्या पाया मैंने अध्यात्म से ?	57
47	जी करता है उड़ूँ मुक्त गगन में	58
48	मैं क्या चाहती हूँ आज ?	59
49	मेरी द्रष्टा बनने की यात्रा (सत्य कथा)	59
50	असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता	60
51	एक पत्र – शिवानन्द आश्रम से	61
52.	परमहंस स्वामी निरंजनानंद सरस्वती का एक पत्र	62
53.	दान–दाताओं की सूची	

संत हृदय

संत हृदय नवनीत समाना । जाकि कृपा न जाय बखाना ।।
जो संतन के दरशन पावे । वाके पूरे भाग खुल जावे ।।
संतन के चरणन की धूरि । बहुत कृपा से मानव पावे ।।
जाको संत की दृष्टि मिले । ताके अगले पिछले जनम सुधारे ।।
संत एक कुसंत अनेक । सत्संग ने लाखों तारे ।।
जिन संतन की सत्संगति पाई । उन महिमा बखानी न जाई ।।
जाको हृदय संत बसे हैं । वाको का रघुबीर सुहाय ।
रघुबीर तो वाको पीछो हैवे ।।
राम राम रटत मन माहीं । संतन को या चीन्हत नहीं ।।
वृथा जनम गँवाए मानव । सेवा से वंचित ये जीवन ।।
कहाँ तोको राम मिलेहि । कोमल सुभाव प्रभु मन रीझे ।
बिन बुलाए प्रभु दौड़े आए ।।
एक संत के आवन से । सब संकट कटि जावे ।।
ओ मन । जाको तू ढूँढत रह । मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारे ।
वा तो तेरे चारों ओर । दीनन में रहा समाय ।।
सेवा एक ही धर्म है । सेवा एक ही कर्म है । सेवा ही नित नेम ।।
सेवा से ही प्रभु मिले । सेवा से ही संत मिले ।।
अब तो तू जाग रे मन । छल कपट को छोड़ रे मन ।।
झूठ प्रपंच से का मिलहि । प्रभु तो घट घट बसीहि ।।
संत हृदय प्रभु मन माहि । संत हृदय मानुष मन माहि ।।
संत का जनम परमारथ । संत का मरण परमारथ ।।
संत तो जुग जुग जीये । वाको जो कोई जानी है । जीवन सफल हो जाए ।।
कथनी करनी एक समान । या संत की प्रथम पहचान ।।
या जीवन की लम्बी यात्रा । संत मिले तो आनन्द यात्रा ।।
एक एक पग जो संत चाले । प्रभु भी ओके साथ चाले ।।
ऐ मन बावरे, संत का तू संग कर ले । क्रोध, ईर्ष्या, बेईमानी आप छूटि जाए ।।
प्रभु कृपा के आवन से, निर्मल होय सुभाय । संत प्रभु का दूत है, चीन्ह सके तो चिन्ह ।।
मतलब का संसार है, मत तू समय गँवा । संत हृदय विशाल है, उसको तू शीश नवाँ ।।
माया माया चहूँ ओर, घोर अंधकार है छाया । संत के हाथ मशाल, वाको ही प्रकाश ।।
एक संत के आवन से, जीवन बदल जाए। चारो ओर आनन्द है, खुशी भीतर न समाए ।।

ऐ मन संत का तू कर ले संग । जीवन का बदले है ढंग ।।
जो मन माया के पीछे दौड़े । प्रभु रहे राह में ठाड़े ।।
देर न कर मानव तू ये जीवन बीता जाय । मानुष देह अमोल है इसको विरथा गवाय ।।
मेरा मेरा सब कहे, संत कहत है तेरा। या जग में यदि संत मिले, भाग बदले है तेरा ।।

एक सद्गुरु कैसा होता है ?

रखता है शिष्यों को अपने हृदय के भीतर छिपा कर, संभाल कर, सहेज कर ।
क्यों ? ताकि उनको कोई चोट न लगे ।
आती है जब जब बाधाएँ शिष्य पर अपनी करुणा का रस सद्गुरु बहाता है।
करुणा का रस बहाता है और उस चोट के दंश को काम कर देता है ।
नहीं जान पाता शिष्य सद्गुरु की इस करुणा को और अनजाने में लाखों उलाहने देता है ।
लाखों उलाहने देता है और कई बार उस सद्गुरु को ही छोड़ देता है ।
और सद्गुरु ! अरे वह तो साक्षात् करुणा की मूर्ति है ।
अपने शिष्य में ईश्वर का रूप देखता है और उसके कोटि अपराधों को भी सहज ही क्षमा कर देता है ।
स्वीकार करता है उसका दूसरे गुरु की शरण में जाना और पुनः शरण में आने पर तहे दिल से उसका भला करता है ।
न कोई राग, न कोई द्वेष, न कोई मोह, न कोई माया, उसको तो ईश्वर ने भेजा है धरा पर परहित के लिए, परोपकार के लिए, परमार्थ के लिए ।
जीते हैं सद्गुरु दूसरों के लिए और माँगते है सेवा प्रभु से दिन रात; क्योंकि मानव जाति का उद्धार ही वे करना चाहते हैं ।
ऐसे सद्गुरु के श्री चरणों में मस्तक स्वतः ही झुकता है करोड़ों का ।
जहाँ भी वे रहते हैं जन–जन का कल्याण करते हैं ।
भर देते हैं असीमित ऊर्जा से पूरे क्षेत्र को जहाँ वे पूजा–पाठ करते हैं ।
उनकी उपस्थिति ही सब दुःखों का निवारण करती है, क्योंकि ईश्वर कृपा उनके श्री चरणों में निवास करती है ।
बड़े भाग्य से ऐसे सद्गुरु का आगमन जीवन में होता है ।
बड़े भाग्य से ऐसे सद्गुरु की शरण जीवन में प्राप्त होती है ।
कट जाते हैं बंधन अनेक जन्मों के और एक दिव्य जीवन की शुरूआत होती है ।
तो आओ हम सब उस सर्वनियंता को पुकारें और प्रार्थना करें कि वह हमारे जीवन में एक सद्गुरु भेजे ।
दे हमको सद्बुद्धि कि हम उस सद्गुरु के श्री चरणों में पूर्णातया समर्पण कर सकें ।

समर्पण से ही मिलेगी गुरु कृपा असीम और अपार। हिम्मत है तो करके देखो।
गुरु आज्ञा के पालन में ही है गुरु की कृपा प्राप्त करने का आधार ।
यही है रहस्य । यही है सफलता प्राप्त करने की कुंजी ।

दुनिया में तीर्थ कहाँ ?

दुनिया में तीर्थ कहाँ ? तीर्थ है वहाँ सच है जहाँ।
दुनिया में सच कहाँ ? सच है वहाँ संत हैं जहाँ।
दुनिया में संत कहाँ ? संत है वहाँ भूख और गरीबी है जहाँ।
गर अमीरी में संत रहता है तो अवश्य ही भोग–विलास में डूबता है । एक सच्चा संत तो गरीबी में फलता–फूलता है ।
संत का संतत्व तो गरीबी के कीचड़ में ही कमल की तरह खिलता है ।
यह एक ऐसा कमल है जो नित प्रतिदिन उज्ज्वल और धवल होता है । क्योंकि उज्ज्वलता और धवलता ही संत की असली पहचान है ।
वस्त्रों की उज्ज्वलता तो असंत के पास भी होती है ।
चरित्र की उज्ज्वलता तो केवल और केवल एक संत की ही थाती होती है ।
एक संत की असली पहचान तो उसकी आंतरिक निर्मलता से ही होती है ।
संत होता है निर्मल, धवल और कोमल अंदर बाहर से ।
न उसके भेद होता है कोई, आचरण और कथन में ।
अपने आचरण से वह अधिक और कथन से कम सिखाता है ।
एक सद्गुरु के रूप में ही उसका सतत अवतरण होता है ।
नहीं चाहता वह नाम और यश । नहीं चाहता वह धन और सम्मान।
जन्म लेता है वह दूसरों के सुख के लिए । जन्म लेता है वह दूसरों के हित के लिए।
बहुजन हितायः बहुजन सुखायः ही उसका नारा होता है ।
नहीं बाँध सकती उसको देश काल की सीमाएँ। न ही कोई भेदभाव उसके भीतर होता है ।
हर जड़ चेतन का उत्थान वह चाहता है ।
सुख ही औरों को वह देना चाहता है और उसके लिए वह स्वयं को अनेक कष्ट देने से भी नहीं चूकता है ।
करता है तपस्याएँ अनेक और दूसरों के सामने एक उदाहरण अपने व्यवहार से प्रस्तुत करता है।
और समाज ! उसकी छोटी सी कमजोरी को भी माफ नहीं कर पाता है ।
चाहता है समाज उसे भगवान के रूप में पूर्ण विकार रहित ।

पर वह भी मानव है । मानव के चोले में है । यह समाज भूल जाता है ।
जो भाग्यशाली होते हैं सद्गुरु पर विश्वास करते हैं वे उनकी अमूल्य कृपा से मालामाल होते हैं।
जगता है हमारा भाग्य जब एक संत हमारे जीवन में आता है ।
देता है अपनी ऊर्जा और तप का उपहार संत हमें । बदले में हमसे कुछ न चाहता है ।

एक सद्गुरु की महिमा

जिनके पास गुरु नहीं होता, वे क्या जाने गुरु का सान्निध्य क्या होता है ?
जिनके पास गुरु नहीं होता, वे क्या जाने गुरु एक सच्चा पिता, माता, भाई और सखा होता है।
सद्गुरु गर एक मिल जाए, तो जीवन की नैया ही संभल जाए ।
मिल जाए दिशा इस मन को, जो दिन–रात इधर उधर भगाए ।
दिन–रात इधर–उधर भगाए, उल्टे–पुल्टे विचार लाए ।
उल्टे–पुल्टे विचार लाए, उल्टे सीधे काम करवाए ।
मानव तो ईश्वर का प्रतिरूप है । ईश्वरत्व के गुण उसमें कूट–कूट कर भरे हैं ।
परंतु एक सद्गुरु के अभाव में, वह इस दुःख की नाव में हिचकोले खाए ।
संसार के समुद्र मे हिचकोले खाए और दिन–रात अपने भाग्य को कोसे ।
दिन–रात अपने भाग्य को कोसे और जो कुछ भी अपने पास है उसका भी लुत्फ उठा न पाए।
जो कुछ भी अपने पास है उसका लुत्फ उठा न पाए और संतोष रूपी धन से कोसों दूर चला जाए। संतोष रूपी धन के अभाव में सुख, शान्ति कैसे आए ?
संतोष रूपी धन के अभाव में लोभ, इच्छा, ही मानव के दामन में आए ।
लोभ और इच्छा के आने से क्रोध, तनाव और चिन्ता तो सहज ही मानव का स्वभाव बने ।
क्रोध तो है एक बीमारी जो अपने साथ उच्च रक्तचाप, हृदयाघात को लाए ।
अनेक रोगों के आने से मानव दिन रात रहे बेहाल परेशान ।
जूझता है आज मानव अपने अंदर के इन दानवों से ।
छिपाता है अपनी व्यथा को झूठे सुख साधनों के दिखावे से ।
पहनता है शोख कपड़े और छिपाता है अपने अंदर के चिन्ता तनाव को ।
अच्छे कपड़े और गहने शरीर तो सजा सकते हैं परंतु मन का क्या ?
मन तो बेचारा झूठे सुख मनोरंजन साधनों में ही आनन्द ढूँढता रहे ।
हे मानव ! उठ जाग तू ! अपने इस मन को अपनी शक्ति बना ।

इसी मन को जिस रोज तू एक सद्गुरु के चरणों में लगा देगा, यह तेरी मुक्ति का साधन बनेगा ।
बदलेगा जब यह नीचा मन एक ऊँचे मन में, तब यह दानव से देवता बन जाएगा ।
दानव से देवता बनेगा और अपने असली स्वरूप को पहचानेगा ।
अपने असली स्वरूप को पहचानते ही, यह अपनी आत्मा की शक्ति को पहचान जाएगा ।
बनेगा तब वह आप्तकाम ।न रहेगी कोई इच्छा उसको ।
सदा ही अपने भाग्य से संतुष्ट रहेगा ।जो कुछ मिलेगा उसमें ही संतोष करेगा ।
तब धीरे–धीरे गुरु उसकी हर मुश्किल आसान करेगा ।
गुरु ले जाएगा उसको उस पथ पर जिस पर वह स्वयं चल चुका है ।क्योंकि उस पथ में अनगिनत खुशियाँ उसकी राह तक रही हैं।
गुरु ही हटाएगा उसकी राह के काँटे ।गुरु ही सिखाएगा उसको पग–पग चलना हाथ पकड़ कर।
जिस तरह माँ एक छोटे बच्चे को चलना सिखाती है।जिस तरह माँ गिरने से बच्चे को उठाती है, प्यार करती है ।
माँ की ही तरह गुरु अपने शिष्य की धीरे–धीरे सफाई करता है ।
उसे उसकी असलियत बताता है और उसकी अध्यात्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है।
थामता है उसको निराशा के घोर अंधकार में, बचाता है उसकी डूबती नैया को तूफानों से ।
अपने हाथों से गोद में उठाता है, अपनी गलती सुधारने की उसे कला सिखाता है ।
भर देता है शिष्य का मन अपने असीम स्नेह और प्यार से ।
ताकि शिष्य बने एक ऐसा केंद्र जो चारों ओर गुरु का प्रकाश फैलाए ।
शिष्य गर काबिल है, आज्ञाकारी है और गुरु पर पूर्ण विश्वास करता है ।
तो गुरु अपनी समस्त संपदा शिष्य पर दोनों हाथों से लुटाता है ।
एक सच्चे मित्र की भाँति, शिष्य के सुख दुःख को वह बाँटता है ।
संसारी मित्रों की तरह कभी न वह धोखा देता है ।
हे मानव ! गर तू इसी धरा पर स्वर्ग का अनुभव करना चाहता है ।
तो ईश्वर से प्रार्थना कर कि तुझे एक सद्गुरु से मिला दे ।
जब तू इस काबिल बनेगा तो सद्गुरु स्वयं ही आकर तुझे चुनेगा ।
बनाएगा तुझे अपना शिष्य, कसेगा तुझे दुःखों की कसौटी पर ।
तेरे पास होने पर, तुझ पर अपनी संपदा लुटाएगा ।
देगा तुझे अभयदान और शक्तिपात करेगा ।
गुरु की शक्ति से तू जग में असंभव काम भी चुटकी में ही करेगा ।

नाम, यश और धन तो स्वयं ही चले आएँगें, तेरा अंतर्मन एक दिव्य निर्मल आनन्द से भरेगा ।
एक ऐसा आनन्द जिसकी तूने कल्पना भी नही की ।
एक ऐसी शान्ति जिसकी तूने कल्पना भी नहीं की थी ।
संसार के सुख तब तुझे लगेंगे फीके, तू दिन रात अपनी आत्मा के सुख में ही भीगेगा ।
न आएगा रस संसार के झूठे सुख साधनों में, क्योंकि तू दिन–रात अपनी आत्मा के झरने में ही नहाएगा ।यह कोई कोल कल्पित कहानी नहीं, सच्चा अनुभव है ।जिस दिन तुझे मिलेगा, तू भी जान जाएगा ।

एक शिष्य के हार्दिक उद्गार

समय के विपरीत बहाव में, जब मैं हतोत्साहित हो जाती हूँ, तुम आ जाते हो एकदम, तुरन्त ।
भर देते हो मुझे अपनी ऊर्जा से और अहसास अपनी उपस्थिति का कराते हो ।
भर जाती हूँ एक नूतन आत्मविश्वास से और कृपा का तुम्हारी अनुभव रोम–रोम में करती हूँ।
नहीं समझ पाती जब कभी तुम्हारी कृपा को, तो किसी न किसी रूप में तुम आ जाते हो ।
करते हो मदद मेरी और अपनी स्नेहमयी गोद में उठा लेते हो ।
कौन हो तुम आखिर ? कौन हूँ मैं ? मेरा और तुम्हारा अनकहा क्या रिश्ता है ?
ये सवाल ज़ेहन को मेरे बार बार मथते है ? परेशान मुझे ये करते हैं ।
तुम तो एकदम चुप रहते हो ।न कुछ कहते हो ।न कुछ करते हो ।
एक अनजाने मददगार के रूप में सदा मेरे साथ रहते हो ।अपनी कृपा से मुझे दया का पाठ पढ़ाते हो ।अपनी दया से मुझे क्षमा का पाठ पढ़ाते हो ।
करते हो क्षमा अपराध मेरे अनगिनत, कृपा अपनी अनवरत मुझ पर बरसाते हो ।
एक अनदेखे रिश्तेदार की तरह मेरे आस पास सदा रहते हो ।
मै भले ही तुम्हें भूल जाऊँ, संसार के विषय भोगों में डूब कर ।पर तुम ! मेरे पुकारने पर तुरंत दौड़े चले आते हो ।
पुकारती हूँ दुःख में तुम्हें जब मैं शिद्दत से, तुम आते हो ।अपनी स्नेहमयी गोद में उठा लेते हो ।
सहलाते हो मेरे जख्मों को और मलहम अपने प्यार का उन पर लगाते हो ।
दुनिया चाहे जितना भी शक करे मेरी सच्चाई और ईमानदारी पर, तुम सदा पास मेरे रहते है।मिलता है भरोसा मुझे तुम्हारे पास होने से ।
बढ़ पाती हूँ मैं सच्चाई के रास्ते पर निडर हो कर तुम्हारी ऊर्जा का सम्बल पाने से ।
बढ़ाते हो हिम्मत तुम दिन रात मेरी, संघर्ष जब मैं करती हूँ ।
करती हूँ निष्काम और निःस्वार्थ सेवा जब मैं, कहीं न कहीं पास मेरे तुम रहते हो ।

और क्या चाहूँ अब मैं ? और क्या पाऊँ अब मैं ? तुम्हारे अहसास में सतत रहने को जी चाहता है । तुमसे जो आनन्द का दरिया बहता है वह निरन्तर मेरी ओर आता है ।
दुनिया के विषय भोगों का रस अब स्वतः ही छूटता जाता है ।

गुरु आज्ञा और गुरु कृपा

गुरु आज्ञा ही केवलम् गुरु कृपा ही केवलम् । हो हर शिष्य का आधार ।
पाना चाहता है निर्वाण गर शिष्य तो गुरु आज्ञा ही बने उसका जीवन ।
इस जग में रहे या उस जग में, गुरु आज्ञा के बिना नहीं है शिष्य का निस्तार ।
गुरु आज्ञा का पालन जब शिष्य अक्षरक्षः करता है तो गुरु कृपा उस पर बरसती है भरपूर ।
एक गुरु कृपा के आने से समस्त रिद्धि–सिद्धि स्वतः ही शिष्य के चारो ओर मँडराने लगती हैं ।
जो शिष्य रिद्धि–सिद्धि के आने से अभिमान से बचा रहता है और गुरु आज्ञा को ही अपना आधार बनाता है, बनता है वह गुरु कृपा पात्र ।
गुरु कृपा के आने से नाम और यश तो स्वतः ही आने लगते हैं । जो शिष्य नाम और यश के अभिमान से बचा रहता है, बनता है वह गुरु का कृपा पात्र ।
स्नेह तो गुरु अपने सब शिष्यों से करते हैं, परंतु बारिश करते हैं अपने स्नेह की, आज्ञाकारी शिष्य पर ।
प्यार तो गुरु अपने सब शिष्यों से करते हैं, परंतु झोली भरते है अपने स्नेह से आज्ञाकारी शिष्य की ।
झोली भरते नहीं, भरकर छलका देते हैं । शिष्य को मालामाल कर देते हैं ।
उसकी काबलियत से कहीं अधिक दे देते हैं । यह मेरा सत्य अनुभव है ।
अगर बढ़ना है शिष्य को अध्यात्मिक राह पर द्रुतगति से, तो करे गुरु आज्ञा का पालन पूर्ण मनोयोग से । गुरु है सूरमा, गुरु है भगवान शिष्य का ।
जो शिष्य यह भाव ला पाता है, वह गुरु पर पूर्ण विश्वास करता है और गुरु कृपा भरपूर पाता है ।
यही है राज़ आगे बढ़ने का । यही है रहस्य कैवल्य पद प्राप्त करने का ।
यही है आधार अच्छा शिष्य बनने का । यही है आधार गुरु और शिष्य के सम्बन्ध का ।
गुरु तो अपने सब शिष्यों को चाहते हैं एक माँ की तरह । गुरु तो अपने सब शिष्यों से प्यार करते हैं अपने बच्चों की तरह ।
सरल, भोला और आज्ञाकारी बच्चा हर माँ को जान से प्यारा होता है ।
जो शिष्य इन गुणों से स्वयं को भरता है, अपनी अक्ल कम लड़ाता है । वही शिष्य गुरु की कृपा का पात्र बनता है क्योंकि वह केवल और केवल गुरु पर ही विश्वास करता है ।

संतों का आगमन

स्वामी शिवानन्द मेरे जीवन में आए एक अमृत की धार बनकर । स्वामी चिदानन्द मेरे जीवन में आए बहार बनकर ।
स्वामी सत्यानंद और स्वामी निरंजन मेरे जीवन के मरूस्थल में आए, पानी का एक अनवरत स्त्रोत बनकर ।
इन संतों के आगमन से, मैं हुई मालामाल । मेरा जीवन हुआ गुलो गुलजार ।
इन संतों के आगमन से, मैंने जाना कि जीवन का असली अर्थ क्या है ?
इन सन्तों के आगमन से मैंने जाना कि देने में ही जीवन की सार्थकता है ।
देना अर्थात् सच्चे मन से देना, बिना किसी दिखावे अथवा बाह्य आडम्बर के ।
और देने के बाद मैंने अनुभव किया, उस सत्य की एक झलक को, जो शास्त्रों में वर्णित है ।
निःस्वार्थ भाव आने के बाद मैंने अनुभव किया, अपने अंदर के प्रसन्नता के स्त्रोत को, जो निरन्तर बहता है ।
सेवा में ही है असली सुख निहित, यह मैंने जाना अपने अनुभव से ।
सेवा को मैंने सीखा, इन संतों के व्यवहार से, न कि शिक्षाओं से ।
गरीबों, दलितों की सेवा, वे कर रहे निःस्वार्थ भाव से ।
वृद्धों और रोगियों को आसरा, वे प्रदान कर रहे निःस्वार्थ भाव से ।
कर रहे हैं दर्शन, दीन दुखियों में, उस परमात्मा के, जो सर्वनियंता है ।
कर रहे हैं उद्धार अनेकों का, वे अपने व्यवहार से, दे रहे हैं प्रेरणा वह जन–जन को ।
है प्यार उनके अन्तर में असीम, अनन्त । गर है दृष्टि किसी के पास तो वह चीन्हे, पहचाने ।
लुटा रहे हैं दौलत करुणा, प्यार और स्नेह की दोनों हाथों से । गर है ग्रहण शक्ति किसी के पास तो वह ग्रहण करे ।

मेरे गुरु की कृपा

हूँ भाग्यशाली मैं जो स्वामी शिवानंद की कृपा मिली । हूँ भाग्यशाली मैं जो स्वामी चिदानन्द की कृपा मिली ।
पड़ी जब कृपा दृष्टि स्वामी सत्यानंद की मुझ पर, तो उन्होंने किया मार्ग दर्शन मेरा ।
ऐसे ज्ञानी गुरुओं की शरण में आने से, मैंने जाना कि असली प्रसन्नता क्या है ।
ऐसे कृपालु गुरुओं की शरण में आने से मैंने जाना कि असली कृपा का क्या अर्थ है ।
बदल दी धारा उन्होंने मेरे जीवन की नीचे से ऊपर की ओर ।
बनाया मुझे ऊर्ध्वरेता और बचाया मुझे अधोगामी होने से ।
दिखाया मुझे इस जीवन का उद्देश्य अपने व्यवहार से, अपने कृत्यों से, अपनी पुस्तकों से ।
पाकर एक अध्यात्मिक उद्देश्य को, जीवन हुआ मेरा परिपूर्ण, आप्तकाम ।

समझ पाई मैं उनकी शिक्षाओं को अपनाकर कि देने में असीम सुख है ।
समझ पाई मैं उनकी शिक्षाओं को व्यवहार में लाकर कि प्यार देने से अनजानों को, बहुत अधिक प्यार और स्नेह मिलता है ।
बाँट रही हूँ खुशियाँ अब मैं जन–जन में ज्ञान के रूप में, उनके सरल शिक्षाओं के रूप में ।
हो रही हूँ मालामाल प्रतिक्षण, उनकी असीम अनुकम्पा से ।
इच्छाएँ दामन छोड़ रही हैं, निम्न मन कमजोर हो रहा है ।
जुड़ कर उनके श्री चरणों से, थोड़ा–थोड़ा स्वयं को समझ पा रही हूँ ।
स्वयं को समझते हुए, कर्मों के रहस्य को देख पा रही हूँ ।
चल पा रही हूँ अध्यात्म की कठिन डगर पर, सहारा उनका प्राप्त करके ।
प्राप्त करके असीम आनन्द और प्रसन्नता नत मस्तक हो रही हूँ उनके श्री चरणों में ।
क्योंकि मैं जानती हूँ कि मेरे अंदर कोई गुण नहीं, ये सब उनकी कृपा का चमत्कार है ।

मेरे परम गुरु श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मेरे परम गुरु स्वामी शिवानन्द हैं करुणा के सागर, दया के सागर ।
सब पर लुटाते हैं वे स्नेह, कृपा और असीम अनुकम्पा; है जिसकी झोली बड़ी वह ग्रहण कर पाता है अधिक, है जिसकी झोली छोटी वह ग्रहण कर पाता है कम ।
है जिसकी झोली बंद वह रह जाता है उनकी कृपा से वंचित ।
दिन–रात उनकी असीम अनुकम्पा बरस रही उनके ज्ञान के रूप में ।
जो हैं जिज्ञासु और पिपासु ज्ञान के, वह सतत उस आनन्द रस को पी रहे, छक रहे ।
अपने निर्वाण के पश्चात् भी, वे जन–जन के मन को आलोकित कर रहे ।
है जिसके पास संपदा विश्वास की, उसकी झोली वह अमूल्य निधियों से भर रहे ।
क्या कहूँ ? क्या न कहूँ ? अपनी जीवनी से, करोड़ों का उत्थान वे कर रहे ।
ऐसे सद्गुरु के श्री चरणों में मेरा शत–शत प्रणाम ! मेरा शत–शत नमन ।
है आज कलियुग में वे लाईट हाऊस जो अनेक डूबती हुई कश्तियों को पार करने का मार्ग प्रशस्त कर रहे ।
है सूत्र उनका सरलतम, हर परिस्थिति में कारगर ।
वे कहते हैं सेवा करो और शुद्ध बनो । जहाँ भी हो, जिस हाल में भी हो, अपने भाव को निष्काम रखते हुए, जो भी कर सकते हो करो ।
सेवा करते करते मिलता है असीम सुख और आनन्द ।
जो प्राप्त करना चाहते हैं असीम सुख, वह एक प्रयोग करें और अपने अनुभव से ही मेरे कथन की सत्यता को परखें ।
मिलती हैं दुआएँ अनेक, इस राह पर चलते–चलते ।
मिलते हैं आशीर्वाद अनेक, इस राह पर चलते–चलते ।

गुरु कहते हैं प्यार करो सबसे अपनी ही तरह और बाँटो, जो कुछ भी तुम्हारे पास है दूसरों के साथ ।
सबको प्यार करने से, सबके साथ मिल बाँट कर रहने से, मिलता है असीम स्नेह और आनन्द ।
यही है कुंजी सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करने की ।
यही है कुंजी गुरु कृपा प्राप्त करने की और अपना जीवन उन्नत बनाने की ।
हैं जो पूर्णतयाः निःस्वार्थ अपने व्यवहार में, बनते हैं ईश्वर कृपा के अधिकारी वे ।
सुख, शांति और प्रसन्नता तो स्वयं ही चली आती हैं और उनके द्वार की चेरी बनती है ।
बनना है निराभिमानी इस कलियुग में और संपदा खुशियों की बटोरनी हैं ।
इस धरा पर जन्म ले कर, अपने जीवन को सार्थक बनाना है ।
ऐसी सरल शिक्षाएँ, मुझे उनके श्री चरणों से जोड़ती हैं और अभिभूत करती हैं ।
अपने गुरु के चरणों को मैं बारम्बार सादर नमन करती हूँ ।

मेरे गुरु स्वामी देवशंकरानंद –एक संस्मरण

सन् 1993 में शेटिका और स्लिप डिस्क के कारण मेरी कमर में अत्यधिक दर्द था । अनेक एलोपैथिक दवाइयाँ भी मुझे राहत पहुँचाने में असमर्थ थीं । तब अपने बड़े भाई के सुझाव पर आखिरी विकल्प के रूप में, मैं योग की शरण में आई । ज्ञानदर्शन योगाश्रम के आचार्य स्वामी देवशंकरानंद जी का व्यक्तित्व एकदम नारियल की भाँति था । वह बाहर से कठोर दिखते थे, परंतु उनका अन्तर्मन एकदम कोमल और करुणा से आपूरित था । लोभ तो उनको छू भी नहीं गया था । उनका जीवन पूर्णतया योग और अपने गुरु स्वामी सत्यानंद जी को ही समर्पित था ।

उनका समर्पण देख कर मैं अंदर ही अंदर हैरान हो जाती थी । एक बार स्वामी सत्यानंद के चित्र को फूल माला अर्पण करते, मैने उनको देखा । वे उस तस्वीर से ऐसे बात कर रहे थे मानों गुरुजी सामने ही बैठे हों । इतनी श्रद्धा ! मुझे तो इतनी श्रद्धा ईश्वर पर भी नहीं थी । मैं सोचने लगी कि कोई इंसान दूसरे इन्सान के प्रति इतनी श्रद्धा कैसे रख सकता है ? वह दृश्य आज भी मेरे मानस पटल पर ऐसे चित्रित है मानो कल ही देखा हो ।

कक्षा में वे सबका व्यक्तिगतरुप ख्याल रखते और सब पर नजर रखते । उस समय मेरा शरीर तो मानों रोगों की खान ही था । एलोपैथिक दवाइयाँ खाने के कारण, पाचन शक्ति भी अत्यधिक कमजोर हो चुकी थी । ऊर्जा की कमी के कारण हर समय मैं थकी–थकी ही रहती थी । धीरे–धीरे धैर्य के साथ उन्होंने मुझे पवनमुक्त आसन–I के कुछ अभ्यास सिखाए । जब मैं अभ्यास जल्दी–जल्दी एक व्यायाम की भाँति करने लगती तो तुरंत मेरे पास आ जाते और कहते, "आप तो काम निबटाने वाली बात कर रही हैं । इन अभ्यासों को यदि सांस की सजगता के साथ करेंगी तो बहुत लाभ होगा" । मन न होते हुए

भी उनकी बात मानती। क्योंकि मेरा शरीर अत्यधिक कमजोर था, अतः ताड़ासन भी ठीक से नहीं कर पाती थी । लघुशंखप्रक्षालन के लिए उन्होंने मुझे 6 गिलास पानी में 2 चम्मच नमक और एक नींबू डाल कर पीने को कहा । बीच–बीच में थोड़ी सी सैर करने को भी कहा । इस सरल प्रक्रिया से जब मेरा पेट पूरी तरह धुल गया तो अपने अनुभव से मैं स्वयं ही आश्चर्यचकित हो उठी । जीवन में पहली बार एक हल्केपन का अहसास असीम ऊर्जा के रूप में हुआ । असीम धैर्य का प्रयोग करते हुए उन्होंने मुझे धीरे–धीरे मेरी पाचन शक्ति को बढ़ाने के लिए पवनमुक्त आसन–II सिखाया । कमर दर्द के लिए भुजंग आसन और मकरासन करते–करते मुझे धीरे–धीरे बहुत अच्छा लगने लगा । मेरा मनोबल बढ़ाने के लिए उन्होने कक्षा में आ रही एक ऐसी महिला से मुझे मिलवाया जो कुछ वर्ष पहले जोड़ों के दर्द के कारण एकदम अशक्त थी। उस महिला की चुस्ती–फुर्ती देखकर मैं अत्यधिक प्रभावित हुई ।

इस तरह एक माँ की भाँति योग ने मुझे अपने स्नेह की छाँव में कब ले लिया, मैं कह नहीं सकती; परंतु मैं योग के दिखने में सरल से आसनों के प्रभाव से असीम ऊर्जा और शक्ति का अनुभव अपने अन्तर में करने लगी । स्वामी जी कक्षा में लगातार विभिन्न आसनों और प्राणायामों के लाभ के बारे में बताते रहते । उनको सुनते–सुनते अत्यधिक ज्ञान की प्राप्ति सहज ही हो गई । वह एक उच्चकोटि के साधक थे । अतः सुबह 4 से 5 बजे ध्यान की कक्षा भी वह निःशुल्क लेते थे । आश्रम में नियमित रूप से आने वाली एक वृद्ध महिला के प्रोत्साहन पर मैंने ध्यान कक्षा में आना आरम्भ किया । सुबह (3:45 A.M) पौने चार बजे घर से अकेले निकलना आसान नहीं था। कार में भी मुझे बहुत डर लगता था । परंतु ध्यान कक्षा में मुझे बहुत अच्छा लगता था । एक अनिवर्चनीय सुख, शांति और ऊर्जा का अनुभव मैं कई घण्टों तक करती रहती थी । परंतु ध्यान की कक्षा में, मैं केवल कुछ ही दिन आ सकी। स्वामी जी ने एक बार 3 दिन का ध्यान योग शिविर लगाया । उस सामूहिक ध्यान में दिव्य अध्यात्मिक ऊर्जा के स्पंदनों का अनुभव मुझे ऊर्जा से पूरा दिन आच्छादित रखता । मेरे अनुभव सुनकर स्वामी जी अत्यधिक प्रसन्न हुए । और तब मैने उनका एक ऐसा रूप देखा जिससे मैं बिल्कुल अनजान थी । उन्होंने न केवल मुझे अनेक छोटी–छोटी साधनाएँ सिखाई अपितु स्वामी सत्यानंद की पुस्तक "योग साधना" पढ़ने के लिए दी । अपने पास रखी हुई पुरानी योग विद्या (बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका) भी पढ़ने के लिए दी । उन्होंने मुझे योगविद्या की आजीवन सदस्यता लेने के लिए भी प्रेरित किया । यद्यपि उस समय मैंने केवल उनकी बात रखने के लिए ही वह सदस्यता ली और अपने छोटे भाई को भी दिलवाई, परंतु आज मुझे उसका महत्व भली–भाँति समझ आता है ।

धीरे–धीरे उनके द्वारा बोए गए ज्ञान के बीज का ऐसा परिणाम होगा, मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकती थी । धैर्य और लगन के साथ नियमित रूप से अभ्यास करते रहने से मैं शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होने लगी। मेरे जीवन का यह एक

बिल्कुल नया आयाम था जिसमें मुझे बहुत आनन्द आने लगा था। पूरे एक वर्ष के बाद उन्होंने मुझे सूर्यनमस्कार सिखाया । सूर्य नमस्कार को मैंने बहुत मनोयोग से सीखा । शीघ्र ही उसके अनेक लाभ असीम ऊर्जा और मानसिक प्रसन्नता के रूप में मेरे जीवन में दृष्टिगोचर होने लगे । अपने अनुभव से मन्त्रों का महत्व मुझे स्पष्ट समझ आने लगा ।

उन्होंने मुझे लिखित जप के लिए प्रेरित किया । जब मैंने एक पुस्तक में पढ़ा कि लिखित जप का लाभ, वाचिक जप से दस गुना अधिक है तो मुझे उनकी शिक्षा का महत्व समझ आया। मंत्र लिखते–लिखते मुझे बहुत आनन्द आने लगा। यद्यपि बीच–बीच में आलस्य के कारण लिखना छोड़ देती, पुनः कुछ दिन बाद फिर आरम्भ करती। आत्मनिरीक्षण की साधना पर भी वह बहुत जोर देते। कहते, ''रोज डायरी में अपनी दिनचर्या और गल्तियाँ लिखो, उपलब्धियाँ भी लिखो। तभी अपनी प्रगति का पता चलेगा।'' मन के आलस्य के कारण कुछ दिन लिखती फिर छोड़ देती। पर मुझे बहुत अच्छा लगता था।

बहुत बार मुझे विष्णु सहस्त्रनाम पढ़ने के लिए कहते । पर मैं अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए उन्हें तर्क देती, "स्वामी जी उसका अर्थ समझ नहीं आता, अतः मजा नहीं आता।'' वे हँस देते । दुर्गासप्तशती के अध्याय संस्कृत में मुझे बहुत कठिन लगते । उनको कहती, "स्वामी जी कुछ समझ में नहीं आता ।" वे कहते, "आप माँ से सच्चे दिल से प्रार्थना करिए, धीरे–धीरे उनकी कृपा से सब समझ आने लगेगा ।" और आज उनका वह कथन मेरे जीवन में अक्षरक्षः सत्य घटित हो रहा है ।

उनकी अध्यात्मिक शक्तियाँ बहुत अधिक थीं। अतः मेरी अध्यात्मिक रुचि को देखते हुए वह सदा मुझे अपने पास ही बिठाते। तरंगों के प्रभाव को मैं उस समय बिल्कुल नहीं समझ पाती थी । परन्तु उनके निर्वाण के कुछ वर्ष बाद जब मैने आश्रम आना शुरू किया तो मुझे उनकी कमी बेहद अखरी । मेरी अध्यात्मिक प्रगति का एक महत्वपूर्ण कारण उनकी उपस्थिति और कुशल निर्देशन था, यह मैंने अपने अनुभव से जाना । जीवन के अंतिम समय में वे कैंसर से पीड़ित होने के कारण अत्यधिक कष्ट में थे। मैं भी गठिया वात के रोग से जूझ रही थी । ऐसे समय में फोन पर ही वे मेरा मनोबल बढ़ाते और मुझे सतत जप करते जाने के लिए प्रेरित करते । उनकी करुणा को याद करके आज भी मेरा मन सहज ही द्रवित हो जाता है ।

उनके जीवन का केवल और केवल एक ही उद्देश्य था और वह यह कि अपने गुरु की शिक्षाओं को प्रचारित करें । टूटे–फूटे खण्डहर के समान बने हुए पुराने योगाश्रम की याद करके सहज ही विश्वास नहीं होता था कि यहाँ अध्यात्म की इतनी निश्छल गंगा बह रही है । शुरूआत में उन्होंने केवल 11 रुपये फीस रखी पूरे परिवार के लिए । मैने भी जब 1993 में योग आश्रम आना शुरू किया तो पूरे साल की फीस केवल 121 रुपये थी । जब मैने बच्चों को योग सिखाने के लिए उनसे निर्देश माँगा तो उन्होंने सहज ही तहेदिल से मेरी

मदद की । बच्चों की विभिन्न समस्याओं का निदान, मुझे वह प्रसन्नता से फोन पर भी बता देते । मेरा बेटा कहता, "माँ, इससे उनकी दुकानदारी कम नहीं होगी ? फिर उनके पास कौन जाएगा ?" मै कहती, "बेटा वे संन्यासी हैं, दुकानदार नहीं हैं ।" इस तरह धीरे–धीरे बच्चों को योग सिखाना मुझे बहुत अच्छा लगने लगा । आज जब मैं ज्ञानदर्शन योगाश्रम में बच्चों के कैम्प लेती हूँ तो सहज ही उनको स्मरण करके मेरी आँखें भर आती हैं । वह मुझे कहते, "प्रीति जी, आप इन बच्चों को योग सिखा नहीं रही हैं, इनमें एक बीज डाल रही हैं ।" आज अपनी आँखों से अपने कई विद्यार्थियों को योग सीखने आते हुए देखती हूँ तो उनके कथन की सत्यता का आभास करती हूँ ।

बच्चों को वे बहुत प्यार करते थे । मेरे बेटे ने पाँचवी कक्षा में 6 माह उनसे योग सीखा । बड़ा होने पर जब भी वह आश्रम मुझे लेने, छोड़ने आता तो वह उसे अंदर बुलाते और प्रसाद देते । वे कहते, "पढ़ाई में स्मरण शक्ति और एकाग्रता बढ़ाने के लिए सूर्य नमस्कार और गुंजन प्राणायाम रोज किया करो ।" बच्चे बड़े हो जाने से अपने मन की ही करते हैं । जब उनसे पूछती, "स्वामी जी, मेरा बेटा तो योग के अभ्यास नहीं कर रहा है, क्या करूँ ?" वे कहते, "हमने बीज डाल दिया है, सही समय आने पर वह बीज स्वतः अंकुरित होगा और एक विशाल वृक्ष का रूप लेगा ।"

अनेक छोटी–छोटी सरल साधनाएँ उन्होंने मुझे सिखाई, जिनको करने में मुझे बहुत मजा आता था । कुछ साधनाएँ मैं पाठकों के लिए यहाँ लिख रही हूँ – 1. लगातार ऊँ का उच्चारण, ऊँ की ध्वनि के प्रति सजग रहते हुए । 2. लगातार भ्रामरी प्राणायाम बिना कानों को बंद किए ही । 3. सांस पर चेतना को केन्द्रित करना और आती जाती श्वास को देखते जाना । 4. जब धीरे–धीरे अभ्यास से मन शांत होने लगे तो सांस की उल्टी गिनती गिनना 50 से 1 तक । 5. उदर श्वसन (सांस लेते हुए पेट को गुब्बारे की तरह फुलाना और श्वास छोड़ते हुए पेट को पिचकाना और उसकी उल्टी गिनती गिनते जाना) । 6. छोटे–छोटे स्वर में ऊँ का उच्चारण लगातार करना 7. बारिश के दिनों में मुझे गिरती हुई बूँदों की ध्वनि पर ध्यान केंद्रित करने को कहते, बहुत मजा आता है । 8. शरीर के विभिन्न अंगों पर हाथ रखते हुए लंबी गहरी सांस लेना और छोड़ना । जैसे दोनों हाथ पेट के नीचे के भाग पर रखकर, लंबी गहरी सांस लेना और छोड़ना और उसकी उल्टी गिनती गिनते जाना । 9. त्राटक भी कभी–कभी कक्षा में चन्द्रमा, वृक्षों पर करवाते, जो मुझे बहुत अच्छा लगता था । दीपक की ज्योति पर भी त्राटक करवाते थे । 10. योगनिद्रा का अभ्यास भी करवाते, विभिन्न तरीकों से । बार–बार अभ्यास की नियमितता पर जोर देते और धैर्य रखने को कहते ।

आश्रम में आने के बाद, मेरे अंधविश्वासों का समूल नाश उन्होंने किया । एक बार सुबह पाँच बजे से मन्त्र जाप रखा । मैं तो कमर दर्द के कारण 10–11 बजे नहाती थी, अतः मैंने आने से मना किया । मैने कहा, "स्वामी जी, मैं तो सुबह जल्दी नहीं नहा सकती । अतः मैं नहीं आऊँगी ।" तब उन्होंने कहा, "मन की सफाई , तन की सफाई से ज्यादा जरूरी है ।

आप बिना नहाए ही आ जाइए ।" श्री यन्त्र की पूजा में जब मैंने मासिक धर्म के कारण आने की असमर्थता जताई तो उन्होंने कहा, "आप वहम मत करिए । केवल माँ की अर्चना सामग्री से मत करिएगा । हवन में आहुति मत डालिएगा ।'' इस तरह मैंने पूजा में बैठकर न केवल श्रवण किया अपितु मंत्रों का उच्चारण भी किया । एक बार उन्होंने एक सप्ताह पूरा प्राणायाम ही सिखाए । सरल से लेकर अनेक कठिन प्राणायाम सीखने में मुझे बहुत आनन्द आया । मन तो प्राणायाम करते–करते सहज ही एकाग्र होने लगता और धारणा का अभ्यास बिना प्रयत्न के हो जाता । नाड़ीशोधन प्राणायाम को उन्होंने सर्वप्रथम गिनती से सिखाया । फिर दूसरे दिन इसी प्राणायाम को मानसिक ऊँ के उच्चारण और उसकी उल्टी गिनती से करवाया । फिर तीसरे दिन उसी अभ्यास को पक्का करवाने के पश्चात् गायत्री मंत्र के ऊपर ध्यान केंद्रित करते हुए, सांस में उस मंत्र को मानसिक रूप से करते हुए करवाया । हम सबको चुनौती दी, ''देखिए किसकी सांस कितनी लम्बी है ? यदि आप एक सांस में गायत्री मंत्र कर पाते हैं तो समझिएगा कि आप योग में आगे बढ़ पाए हैं ।" छोटे बच्चों की तरह मैंने और अन्य कइयों ने इसका खूब आनन्द उठाया । जब मैंने बच्चों को नाड़ीशोधन प्राणायाम मंत्र के साथ करवाया तो उन्हें बहुत आनन्द आया और मंत्र का लाभ भी सहज ही उनको प्राप्त हुआ । योग में इतनी रोचक विविधता हो सकती है, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी । चौथे दिन उन्होंने गायत्री मंत्र के साथ ऊँ भूः, ऊँ भुवः, ऊँ स्वः, ऊँ मह ऊँ जनः ऊँ तपः ऊँ सत्यम् मंत्र भी जोड़ दिया । अब तो प्राणायाम बहुत ही कठिन हो गया । इस तरह मज़ा भी बहुत आया और खेल ही खेल में हमें अपनी सांस की लम्बाई को नापने का एक रोचक सरल तरीका भी मिल गया ।

ध्यान करने और करवाने में उनकी विशेष रूचि थी । परंतु अधिकांश लोग तो आज योग को एक रोग ठीक करने की विद्या तक ही सीमित कर दिए हैं । कभी–कभी वह इस बात से दुःखी हो जाते तो कहते, "अजी आप लोग तो सूखी रोटी ही खा रहे हैं । जिस दिन ध्यान का रसगुल्ला चख लोगे तो जानोगे, योग क्या है ।" कक्षा में बार–बार योग के सही उच्चारण पर ध्यान देने पर जोर देते और कहते ''योग का वास्तविक अर्थ है आत्मा का परमात्मा से जुड़ना । आप लोग तो योग को योगा बना दिए हो ।" उस समय तो उनकी बाते सिर के ऊपर से गुज़र जाती पर आज ईश्वर की कृपा से उन बातों का सार थोड़ा–थोड़ा समझ पाती हूँ ।

अध्यात्मिक ज्ञान का खजाना उनकी अथाह सम्पत्ति थी । दिन–रात नई–नई पुस्तकें पढ़ते रहते और योग के वैज्ञानिक पक्ष को हमें समझाते रहते । ज्ञानदर्शन योगाश्रम, भिलाई में उन्होंने लायब्रेरी बनाई जिसमें आज 5000 अध्यात्मिक पुस्तके हैं । स्वामी सत्यानंद ने विश्व के अनेकों वैज्ञानिकों के साथ योग पर अनेक परीक्षण किए थे जो समय–समय पर योग विद्या में छपते । उदाहरणतया उन्होंने बताया कि ध्यान के समय मस्तिष्क की तरंगे कैसे बदलती हैं । प्राणायाम से मन क्यों शान्त हो जाता है ? शरीर में क्या–क्या रासायनिक

परिवर्तन होते हैं आसन, प्राणायाम और ध्यान के सरल अभ्यासों से । आज का युग विज्ञान का युग है अतः यह वैज्ञानिक विवेचन सबको बहुत भाता है। भ्रामरी प्राणायाम करने से याददाश्त भी बढ़ती हैं और मन के सब तनाव भी शीघ्र ही दूर हो जाते हैं । तनाव रहित मन ही एकाग्र हो सकता है ।

आज तो ये बात विज्ञान भी मान रहा है कि सफलता दिलाने में तनावरहित अवस्था का बहुत बड़ा हाथ है। क्योंकि तनाव की अनुपस्थिति में ही व्यक्ति बड़े–बड़े निर्णय सरलता से ले पाता हैं । योग के विभिन्न सरल अभ्यास करने से व्यक्ति की आंतरिक शक्तियाँ जाग्रत होने लगती हैं । मस्तिष्क का केवल 10 प्रतिशत भाग ही आज अधिकांश लोगों में जाग्रत है । योग के द्वारा मस्तिष्क का 90 प्रतिशत बचा हुआ भाग भी जाग्रत करना सम्भव है । जिस व्यक्ति की आंतरिक शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं वह ही वैज्ञानिक, कलाकार, लेखक, संगीतज्ञ बनता है । इस तरह की बातें उनके मुखारविन्द से सुनते–सुनते न जाने कब योग के प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गई, कुछ ठीक से याद नहीं, परंतु योग निश्चित रूप से मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन गया । और सच ही तो है जब एक ऐसे निःस्वार्थ गुरु की शरण में व्यक्ति आता है तो बहुत सारी अनकही बातें स्वतः ही व्यक्ति सीख जाता है उनके व्यवहार से ।

आज मैं लेखिका के रुप में उनके कथन की सत्यता को क्षण–क्षण अपने जीवन में घटित होते हुए देख रही हूँ क्योंकि साहित्य मेरा विषय नहीं था, मैं तो विज्ञान की छात्रा थी । अब इसे योग का चमत्कार न कहूँ तो और क्या कहूँ ? धन्य हैं ऐसे गुरु जो आज भी अपनी शिक्षाओं से हमारे दिलों में जीवित हैं । उन्होंने सन् 2002 में अपने पार्थिव शरीर का त्याग किया परंतु मुझे तो आज भी बार–बार ये अहसास होता है कि वे कहीं मेरे आस–पास ही हैं और अपने आशीर्वाद से मेरा जीवन धन्य कर रहे हैं ।

अरे मानव ! जाग तू ! कहाँ तू डूबा है विषयों और भोग विलास में ?
कहाँ तू दौड़ता है दिन–रात धन संचय करने के साधनों में,
ये जीवन अनमोल है । यूँ ही बीत जाएगा । तू पछताता ही रह जाएगा ।
कर ले कमाई कुछ परमार्थ की । परमार्थ की जो तेरे केवल इस जन्म को नहीं अपितु अनेक जन्मों को सुधार देगी ।
बनाएगी तुझे अमर और तेरी कहानी जन्मों तक कही जाएगी ।
कर सकता है तू सुवासित अनेको जीवन, जो बनेंगे पुष्प इस संसार की बगिया के ।
खिला सकता है कलियाँ अनेक जो मुरझाने को हैं ।
जरा आँख तो खोल । जीवन का नजरिया तो बदल । कहाँ होगा फिर विषाद ?
और कहाँ होगा तब दुःख ? पूरा विश्व ही तेरा परिवार बनेगा और तू एक नेक इंसान बनेगा ।
निकलेगा तू अपने स्वनिर्मित स्वार्थ के दायरे से और अनेकों का जीवन रोशन करेगा ।
तभी बनेगा तू प्यारा ईश्वर का और कृपा उसकी अपार पाएगा ।

मेरे गुरु–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मेरे गुरु दया के सागर हैं । मेरे गुरु कृपा के भण्डार हैं । बरसती है कृपा उनकी निरन्तर, सतत उन पर जो उनकी आज्ञा का पालन करते हैं ।
मैंने उनको गुरु माना है पर वे स्वयं को शिष्य ही समझते हैं । कर रहे हैं प्रचार और प्रसार अपने गुरु स्वामी शिवानन्द की शिक्षाओं का अपने व्यवहार के द्वारा ।
सेवा, प्यार और दान के त्रिशूल से दे रहे हैं उपदेश आज के दुःखों का संहार करने का ।
जैसे शिव करते हैं संहार आसुरी शक्तियों का अपनी दृष्टि से, अपने त्रिशूल से ।
वैसे ही स्वामी सत्यानंद कर रहे हैं संहार मानव के काम का, लोभ का और क्रोध का ।
अपनी सरल शिक्षाओं से कर रहे वे जन–जन को आप्लावित ।
है जिसमें थोड़ी सी भी बुद्धि वह कृपा को उनकी ग्रहण कर सकता ।
अब भला रोज़ रामायण पढ़ने से काम, क्रोध, लोभ मद और मोह छूटेगा, इससे सरल शिक्षा क्या होगी ?
थोड़ी सी सेवा रोज़ करने से अंदर के कषाय कल्मष धुलेंगे, जन्मों के पाप मिटेंगे, इससे सरल शिक्षा क्या होगी ?
किसी गरीब बच्चे को एक नया ड्रेस खरीद देने से प्रभु की ऊर्जा और कृपा प्राप्त होगी, इससे सरल शिक्षा क्या होगी ? कीर्तन सुनने से ईश्वर का साक्षात्कार तक हो सकता है, मन की सारी चिन्ताएँ और विषाद मिट सकते हैं, इससे सरल शिक्षा क्या होगी ? बच्चों को दैवी ऊर्जा का स्त्रोत मानो, गरीब कन्याओं और बालकों को प्यार करो, इससे सरल शिक्षा क्या होगी ?
है जिनकी तकदीर उज्ज्वल और धवल, वे स्वामी जी की इन सरल शिक्षाओं का पालन कर रहे हैं ।
इन सरल शिक्षाओं का पालन कर रहे हैं और दिव्य प्रेरणाओं से ओत–प्रोत हो रहे हैं ।
दिव्य प्रेरणाओं से ओत–प्रोत हो रहे हैं और नित प्रतिदिन ईश्वर की कृपा को अपनी झोली में समेट रहे हैं ।
गर आप चाहते हैं ईश्वर की कृपा को प्राप्त करना, गर आप चाहते हैं अपने जीवन को सुख, शान्ति और प्रसन्नता से भरना; तो इन सरल शिक्षाओं को अपना कर देखिए । अपने अनुभव से ही मेरे कथन की सत्यता को परखिए ।
है स्वर्ग इसी धरा पर, गर आपके अंदर सुख, शान्ति और प्रसन्नता का साम्राज्य है ।
है नरक इसी धरा पर, गर आपके अंदर चिंता, दुःख और रोग का राज्य है ।
चुनना आपको है – स्वर्ग या नरक ? चुनना आपको है मोक्ष या बन्धन ? चुनना आपको है असीम सुख या अथाह दुःख ?

स्वामी चिदानन्द मेरे जीवन में कैसे आए ?

यह बात बिल्कुल सच है कि स्वामी चिदानन्द आज भी जीवित हैं । वे ऐसी आत्मा हैं जो एक शरीर में होते हुए भी अनेकों का कल्याण करने की क्षमता रखती थी । अपने एक अंकल के द्वारा मुझे स्वामी जी की कुछ पुस्तकें उपहार स्वरूप मिलीं उनमें स्वामी जी की एक पुस्तक, जो योग पर थी, मुझे बहुत पसंद आई । जब मैंने उसमें स्वामी जी द्वारा बताए गए मन्त्र को पढ़ कर सूर्य नमस्कार करना आरम्भ किया तो अचानक मुझे लगा कि मेरा पूरा शरीर एकदम हल्का हो गया है । देह का भान एकदम समाप्त हो गया । एक अद्वितीय और अनुपम सुख से मैं भर उठी । मैं कभी भी स्वामी जी को मिली नहीं थी ।

अपने अनुभव से मैं खुद आश्चर्यचकित हो उठी । एक दिव्य संत की असीम अनुकम्पा का अनुभव मैं रोम–रोम में सहज ही कर सकी । इतनी करुणा ! उस अनुभव ने एक दिव्य श्रद्धा की पूंजी मुझे प्रदान की जो आज भी मुझे उनके प्रति आकर्षित कर रही है और मैं निरन्तर उनकी अनेक पुस्तकें पढ़ते हुए अपना जीवन उन्नत कर रही हूँ । उनकी एक–एक शिक्षा मेरे जीवन में प्रेरणा स्त्रोत की तरह है, जो संसार के भँवर में मेरा मार्गदर्शन कर रही है ।

आखिर कर्म है क्या ?

हर कर्म एक बीज है । एक बीज है जो समय आने पर अंकुरित होता है ।

अंकुरित होता है, वृक्ष बनता है और फलित होता है । लगते हैं फल उस कर्म वृक्ष में सुख और दुःख के ।

अच्छे कर्मों के फल सुख के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं ।

अक्सर आदमी हैरान होता है, दुःख में कभी भाग्य को तो, कभी अपने भगवान को कोसता है ।

अक्सर आदमी मदहोश होता है सुख में और अपने से नीचे वालों को दुःख देने से भी नहीं चूकता है ।

हैं सुख और दुःख दोनों जाल माया के । गर आदमी सुख और दुःख दोनों में सम रह पाता है और उस ईश्वर से जुड़ा रहता है ।

तो वह प्राप्त करता है ईश्वर कृपा असीम और अनंत । ए मानव जाग तू ! अच्छे बीज डाल अपने जीवन की भूमि में अच्छे कर्मों के रूप में ।

सेवा कर गरीबों, वृद्धों और जरूरतमंदों की निष्काम । होंगे तेरे सब काम स्वयं ही ।

सेवा के पेड़ पर फल लगेंगे भक्ति के और ईश्वर कृपा के जिनको खा कर तू तृप्त हो जाएगा अंतर तक ।

प्यार कर बेगानों से अपने जैसे, अपने परिवार वाला समझ के । जिस रोज तू आत्म भाव ला पाएगा तेरा जीवन ही सफल हो जाएगा ।

देखेगा नर में नारायण और जो कुछ भी अपने पास है दूसरों में बाँटेगा निःस्पृह और निष्काम भाव से ।

तब आएँगे प्रभु, तुझे गोद में उठाएँगे और तेरा जीवन सफल बनाएँगे ।

छूटेगा तू जन्म–मरण के चक्कर से, करेगा दर्शन अपने आत्म स्वरूप के और इसी धरा पर जीते जी निर्वाण पा जाएगा ।

ईश्वर तो एक ही है, चाहे उसे पुकार ईशु के नाम से, अल्लाह के नाम से या महावीर के नाम से ।

धर्म तो एक ही है इन्सानियत का और वह सिखाता है परहित, करुणा और दया ।

कर्म के भाव का ही तो महत्व है । जिस रोज़ यह भाव सकाम से निष्काम बनेगा, तेरा जीवन गुलोगुलजार बनेगा । अच्छे कर्म करता जा बिना आशा के, उम्मीद के सतत निरन्तर, आस्था प्रभु के श्री चरणों में रखकर ।

बिना फल की आशा से किए गए कर्मों से पुराने कर्मो का भी क्षय होगा ।

कर्मों के क्षय होने से, तू शुद्ध बनेगा और अपने आत्मस्वरूप को जानेगा ।

जानेगा कि तू ईश्वर का ही अंश है, उसका ही रूप है, स्वरूप है ।

तब न रहेगा दुःख, न रहेगा सुख, होगा आनन्द ही आनन्द असीम और अनन्त !

बनेगा तू एक संत जो अनेकों का मार्गदर्शन करेगा और उनका जीवन सुख से भरेगा ।

मैं स्वयं से पूछती हूँ, "मैं कौन हूँ ?"

जैसे ही मेरा मन भटकने लगता है, मैं स्वयं से पूछती हूँ, "मैं कौन हूँ ?"

क्यों मैं इस संसार में भटक रही हूँ, अनवरत मानसिक रूप से ?

क्यों मेरा मन मुझे याद दिलाता है बरसों पुरनी बातें अथवा ले जाता है भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं, में ? तब कहीं से अंदर से एक आवाज आती है कि 'यह मन तो तुम नहीं हो, तुम तो हो एक सत्चित् आनन्द आत्मा ।'

इस विचार के आते ही मन थोड़ा टिकने लगता है । पुनः कुछ क्षणों के पश्चात् यह फिर दुनिया में घूमने लगता है ।

करना चाहती हूँ ध्यान, पर हो जाती है सारी दुनिया की सैर ।

इसी ऊहापोह में ध्यान का समय निकल जाता है और मैं रिक्त रह जाती हूँ ।

स्वामी शिवानन्द कहते हैं, "ध्यान के बिना सुख कहाँ ?" मैं पूछती हूँ वह ध्यान कहाँ से लाऊँ ? कहीं हाट में बिकता हो तो खरीद लूँ ।

तब ईश कृपा से मुझे एक सद्गुरु मिले । एक ऐसे सद्गुरु जिन्होंने मेरी व्यथा समझी ।

दिखाया मार्ग मुझे योग का और अनेक छोटी–छोटी साधनाएँ सिखाई ।

उन छोटी–छोटी साधनाओं को नियमित रूप से, पूरी ईमानदारी से करते–करते, मेरा मन प्रशिक्षित होने लगा । वह मन जो एक जंगली घोड़ा था, अब धीरे–धीरे पालतू बनने लगा ।

होने लगी भटकन कम मन की और मुझे शनैः–शनैः गहन शांति का अहसास होने लगा ।

तब मुझे मिला ज्ञान का उपहार, संतों की वाणी को सुनने का सौभाग्य ।

सत्संग से गुरु के, मेरा जीवन हुआ मालामाल । पकड़ ली बाँह उन्होंने मेरी और मुझे सेवा का मार्ग दिखाया ।
सेवा का मार्ग अपने वचनों से नहीं, अपने व्यवहार से ।
क्योंकि रिखिया में आज वे सेवा, सेवा और सेवा ही कर रहे हैं ।
मेरे मन को मिली एक दिशा । एक ऐसी दिशा जिसने उसके खालीपन को भर दिया।
और न केवल भर दिया अपितु असीमित सुख, शान्ति और आनन्द से सराबोर कर दिया ।
छूट गई तृष्णा बाहरी रूप सजाने और सँवारने की । बची है अब इच्छा सेवा, सेवा और सेवा करने की ही ।
शिवानन्द कहते हैं, "सेवा करो और शुद्ध बनो ।" उनका यह कथन मैं अपने जीवन में घटित होते शत–प्रतिशत देख रही ।
सेवा करना कितना सरल है, ये मैने सेवा करके जाना ।
बिना इच्छा के की गई सेवा का अपरिमित फल है ।
आरम्भ में ये कठिन अवश्य है, परंतु गुरु पर विश्वास रखते हुए यदि व्यक्ति कर पाता है तो अंदर का आनन्द ही उसका प्रेरणा स्त्रोत बनता है ।
जो मन बंदर की तरह दिन–रात उछलता कूदता था, स्वतः ही शान्त होने लगता है । सेवा के साथ गर प्यार और दान को भी जोड़ा जाता है तो उसका फल कई गुना अधिक मिलता है।

सेवा करो निष्काम । प्रभु तो केवल भाव देखता है । प्यार करो उदारता से । प्रभु तो केवल भाव देखता है । दान दो, दोनों हाथों से । प्रभु तो केवल भाव देखता है । जो कुछ भी तुम्हारे पास है उसे दूसरों के साथ बाँटों उदारता से, प्रभु तो केवल भाव देखता है। मत करो चिन्ता भविष्य की कपोल कल्पित, जो भाव से इस पथ पर चलता है, प्रभु पग–पग पर उसकी राह के काँटे अपने हाथ से चुनता है ।
चुनता है काँटे उसकी राह के और सुगन्धित सुवासित फूलों से उसका जीवन भर देता है ।
छूटने लगते हैं समस्त बंधन मोह और आसक्ति के धीरे–धीरे ।
छूटने लगते हैं समस्त भ्रमजाल क्रोध और अहंकार के ।
इस मार्ग पर चलते–चलते जब प्रभु का अहसास होने लगता है, तब व्यक्ति का जीवन स्वतः ही मालामाल होने लगता है । देख पाता है चमत्कार ईश कृपा के पल–पल घटित होते अपने जीवन में; एक दिव्य आनन्द से वह भर जाता हैं ।
जब देखता है कि कर्ता प्रभु हैं और यह संसार उनकी लीलास्थली है, फिर अंतःकरण से समस्त अभिमान छूट जाता है।
मन का अस्तित्व तो कहीं बहुत पीछे ही छूट जाता हैं । आता है वह बार–बार अपना वर्चस्व जमाने, व्यक्ति को भटकाने, पर अब उसकी जड़ उखड़ चुकी है, अतः अधिक देर टिक नहीं पाता है ।

यह मन !

ये मन ! हर समय भागे ! हर समय दौड़े ! कहाँ ? दुनिया की रंगीनियों में ! ढूँढ़े सुख ये मन उन रंगीनियों में । पाए सुख ये मन मन क्षणिक रंगीनियों में ।
एक ही चीज से फिर उकता जाए, बोर हो जाए ।
माँगे हर पल कुछ नया भोजन, नया मनोरंजन, नए दृश्य , नए वस्त्र। इसी उहापोह में, ये जीवन हाथ से निकल जाए।
ऐ मानव ! खाली हाथ आया और खाली हाथ ही जाना है ।
कर ले कमाई कुछ आत्मज्ञान की। क्यों ? मिलेगा सुख तुझे अनन्त उस ज्ञान से ।
पाएगा तब जानेगा । चाहेगा तब पाएगा । थोड़ा सा पुरूषार्थ तो करना ही पड़ेगा ।
तू एक कदम चल, प्रभु दस कदम तेरे पास आ जाएँगे ।
अपने अनुभव से मेरे कथन की सत्यता को परख ।
अपने अंदर की पशुवृत्ति को छोड़ ।
होगा तेरा सामना जब अपने अंदर के प्रकाश से (जो तेरे अंदर प्रभु का ही अंश है) भूल जाएगा सब संसारिक क्षणभंगुर सुखों को। क्योंकि यह सुख तुझे अंदर तक तृप्त करेगा, एक अनूठी प्रसन्नता से भर देगा। एक ऐसी प्रसन्नता जिसकी तू कल्पना भी नहीं कर सकता !

देखती हूँ अपने मन को

देखती हूँ रात–दिन अपने मन को उछलते कूदते ।
देखती हूँ रात–दिन अपने मन को एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी इच्छा के पीछे भागते ।
सोचती हूँ, मनन चिन्तन करती हूँ; क्यों आखिर क्यों नहीं रह पाता यह मन स्थिर ?
सोचती हूँ, मनन चिन्तन करती हूँ; क्यों आखिर क्यों नहीं हो पाता यह मन तृप्त ?
सोचती हूँ , मनन चिन्तन करती हूँ ; क्या मैं इसी तरह इस मन के भुलावे में जीवन बिता दूँगी ?
सोचती हूँ, मनन चिन्तन करती हूँ; क्या मैं अपना जीवन व्यर्थ ही इस तरह गँवा दूँगी?
स्वयं से दिन–रात पूछती हूँ; मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ से आई हूँ ? स्वयं से बार–बार पूछती हूँ; मेरे इस पृथ्वी पर आने का क्या प्रयोजन है ?
कोई तो बताए । कोई तो मेरा मार्गदर्शक बने । कोई तो मुझे इस चक्रव्यूह से निकलने का रास्ता बताए ।
और तब ईश कृपा मुझे एक सद्गुरु का मार्गदर्शन मिलता है ।
सद्गुरु मेरा हाथ पकड़ते हैं और मेरे सारे अनकहे प्रश्नों के भी उत्तर दे डालते हैं ।
भर जाती हूँ एक दिव्य आनन्द से । भर जाती हूँ एक दिव्य प्रसन्नता और आह्लाद से ।
बता देना चाहती हूँ समस्त विश्व को अपने अनुभव; क्योंकि मैं चाहती हूँ कि वे भी ऐसे सद्गुरु की शरण ग्रहण करें ।

ऐसे सद्‌गुरू की शरण ग्रहण करें और अपना जीवन धन्य बनाएँ ।
मत खोएँ अपने जीवन को इस जन्म–मृत्यु के चक्र में ।
सद्‌गुरु तो हैं प्रतिनिधि ईश्वर के इस धरा पर जो अनेकों का उद्धार कर रहे हैं ।
है करुणानिधि दयानिधि वे, लाखों की झोली मोतियों से भर रहे हैं ।
ऐ दुनिया वालों ! लूट सको तो लूट लो, सद्‌गुरु लुटा रहे हैं ।
फिर न कहना अंत समय में कि हाय ये जीवन व्यर्थ चला गया ।
समय तो रेत की तरह हाथ से फिसलता जा रहा । ये सांसें तो गिनी हुई हैं खत्म हो जाएँगी ।
चला जाएगा यह मानव जीवन व्यर्थ, रह जाओगे हाथ मलते पछताते ।
उठो ! जागो ! इस मानव देह का मूल्य पहचानो । मत खोओ इसे काम, क्रोध और वासनाओं में ।
विषय भोग तो हैं असीम, अनन्त । न होंगी कभी इंद्रियाँ तृप्त ।
इन्द्रिय सुख से ऊपर उठो । अपने अंदर के आनन्द से जुड़ो ।
है अनन्त आनन्द और प्रसन्नता तुम्हारे अंतर में, उसको प्राप्त करो ।
अपना जीवन धन्य बनाते हुए , अनेकों का मार्गदर्शन करो ।
जब प्राप्त होगी कृपा ईश्वर की, तभी समझ पाओगे रहस्य मेरे शब्दों का ।
जुड़ोगे अपने अंतर से और आनन्द असीम, अनन्त पाओगे ।
पाओगे वह आनन्द जिस पर तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है । पाओगे वह सुख और प्रसन्नता जिसके लिए तुम इस धरा पर आए हो ।
फिर कहाँ का दुःख और कहाँ का विषाद ?
फिर कहाँ का द्वन्द्व ? और कहाँ की इच्छा ?
अंदर की दुनिया है प्रकाश की दुनिया । अंदर की दुनिया है प्रभु की दुनिया ।
अंदर की दुनिया में चलता है प्रभु का कानून । अंदर की दुनिया में सच्चाई और ईमानदारी का ही है मान ।
जो कोई भी बाहर की दुनिया में सच्चा और ईमानदार रह पाता, वह ही अपने अन्दर में प्रभु के दर्शन पाता ।
नहीं भाता प्रभु को छल कपट और धोखा । नहीं चाहिए प्रभु को कोई दिखावा ।
सख्त नफरत है प्रभु को झूठ और छल प्रपंच से, जो कोई भी इनका आसरा लेता, प्रभु की कृपा से वंचित रह जाता ।
प्यारे हैं अपने सब बच्चे प्रभु को । परन्तु सच्चे और भोले हैं लाड़ले प्रभु के ।
इसलिए बच्चे प्रभु को प्यारे हैं । बनो तुम बच्चों की तरह निश्छल और भोले ।
पाओगे प्रभु की कृपा अनन्त और असीम । बन जाओगे राही उस पथ के जो अनन्त सुख, शान्ति और प्रसन्नता की ओर जाता है ।
कहाँ होगा दुःख फिर ? और कहाँ होगा विषाद फिर ?

आखिर मैं क्यों फैशन के पीछे भागूँ ?

कभी–कभी सोचती हूँ, मनन चिन्तन करती हूँ जब यह मन फैशन के पीछे दौड़ता है, कि आखिर मैं किस के लिए जी रही हूँ?
अपने लिए ? या फिर दूसरों के लिए ?
तब अंदर से आवाज आती है कि जीना है तो परोपकार के लिए जी ! जीना है तो दूसरों का कुछ भला कर !
परोपकार करते हुए, एक असीम सुख, चैन और शान्ति का अहसास अपने अंतर में करती हूँ।
तब कहीं भी नए फैशन के कपड़ों अथवा सुख उपभोग की सामग्री का तालमेल अपनी आन्तरिक सुख शान्ति और प्रसन्नता से नहीं कर पाती हूँ । जब अंदर का सुख इतना अधिक मिलता है तो फिर फैशन जनित वस्त्र अथवा उपभोग की वस्तुओं को खरीदने की लालसा स्वतः ही अपनी मौत मर जाती है ।
चाहती हूँ मैं अब, अपनी जिन्दगी को अपने हिसाब से जीना, ना कि दुनिया के पैमाने से ।
समाज की मर्यादाओं का पालन करते हुए; घर गृहस्थी के कर्त्तव्यों को निभाते हुए; चाहती हूँ बाँटना जो कुछ मेरे पास है दूसरों के साथ, हो चाहे वह जाना अथवा अनजाना; क्योंकि कोई कामना नहीं है अब अंतर में नाम, यश और पदवी की ।
सेवा प्यार और दान के त्रिशूल से, मेरे अंदर के दानवों का धीरे–धीरे क्षय हो रहा ।
गुरु और ईश्वर कृपा से अज्ञान का आवरण धीरे–धीरे हट रहा । छँट रहे हैं बादल, मोह और लोभ के, अपने सत्य स्वरूप का ज्ञान धीरे–धीरे हो रहा । ज्ञान के आगमन से एक गहन शान्ति का अहसास मुझे अंतरतम तक भर रहा ।
जब सब कुछ अंदर का खेल है तो फिर बाहरी व्यक्तित्व के पीछे क्यों भागूँ।
क्यों न सेवा, प्यार और दान के द्वारा अपना अंतर धवल करूँ ?
ये है पूँजी मेरी असली, जो मुझे प्रभु कृपा दिलवा रही । फिर क्यों न मैं अधिक से अधिक इसका संग्रह करूँ ?
ये फैशन तो रोज–रोज बदलता है, और खर्चा करवाता है । प्रभु प्रदत्त सुख तो दिन प्रतिदिन बढ़ता है और खर्चा कुछ भी नहीं करवाता है ।
फिर क्यों न मैं समझदारी का सौदा करूँ ?
गुरु कहते हैं निष्काम भाव से अनजानों की सेवा करने से दुष्कर्मों का क्षय होता है और प्रारब्ध बदलता है ।
फिर मैं क्यों न गुरु आज्ञा का पालन करूँ ?
जी चाहता है अब छोड़ कर फैशन की अंधी दौड़, कुछ परमार्थ करूँ अनजानों के लिए और अपने कर्मों की लेखनी से अपना भाग्य लिखूँ। एक ऐसा भाग्य जिसमें सुख, शान्ति और

प्रसन्नता का भरपूर समावेश हो। एक ऐसा भाग्य, जिस पर दुःख की नाम मात्र भी छाया न हो।

प्रारब्धवश गर दुःख आए भी तो, मेरे अंतर को न छू सके ।

गुजर जाए वह, एक हवा के झोंके की तरह और जीवन मेरा नित प्रतिदिन प्रभु कृपा से सराबोर हो ।

मेरा मन–एक झलक

(सत्यकथा)

परम पूज्य श्री स्वामी शिवानंद की असीम अनुकम्पा से मुझे उनके ज्ञान यज्ञ में एक बूंद बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । मैं नहीं जानती कि मेरा भाग्य एकदम कैसे चमक उठा, क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से मैंने कोई भी ऐसा कार्य या साधना नहीं की, जिसका यह परिणाम था । पूज्य स्वामी जी की शिक्षाओं को पढ़ते–पढ़ते, आत्मसात करते–करते, अचानक एक दिन मैं उनको अपने जीवन में प्रयोग करने लगी । परमहंस श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती जी की शिक्षाओं पर किए गए अनेकों प्रयोग मेरे जीवन में सत्य प्रमाणित होने लगे । परम गुरु स्वामी शिवानंद की शिक्षाओं को भी मैने अपने जीवन में सत्य होते प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया ।

अपनी छोटी–छोटी सफलताओं से, मैं आश्चर्यचकित हो उठी । धीरे–धीरे मेरे विश्वास की नींव कब दृढ़ हो गई, कह नहीं सकती । परंतु अपने जीवन के इस अप्रत्याशित परिवर्तन का एक सुखद अनुभव, मैं धीरे–धीरे अपने रोम–रोम में करने लगी । आनन्द की एक तीव्र लहर ने मेरे जीवन की धारा ही बदल दी । रामायण और गीता नित्य पढ़ना, मंत्र लेखन करना, रोज रात को आत्म निरीक्षण के पश्चात् डायरी लिखना, मेरी दिनचर्या के अभिन्न अंग बन गए । मन्त्र जप और कीर्तन का अनिवर्चनीय लाभ भी, मैं अपने अन्तर में अनुभव सदा प्रतिदिन करने लगी। जीवन सहज ही एक अद्वितीय आनन्द से भर उठा । विपरीत परिस्थितियों में अपना मानसिक संतुलन रखते हुए , सुख और दुःख में सम रहने लगी । क्षमा, मेरे स्वभाव का एक सहज अंग बन गई । क्रोध और तनाव तो मेरे जीवन से मानों बहुत दूर चले गए ।

सेवा करते–करते, धीरे–धीरे निष्काम भाव स्वतः ही प्रस्फुटित होने लगा । एक हद तक मन भी शान्त हो गया । कुछ दिनों पहले, अपने पिता जी की मृत्यु के दुःख को भी मैंने बहुत बहादुरी के साथ सहन किया । परंतु मैं नहीं जानती थी कि मेरा निम्न मन अभी भी एक शिकारी की तरह घात लगाए, मेरे भीतर ही कहीं छिपा बैठा है । लगभग 15 दिन की यात्रा के कारण, मेरी दिनचर्या छिन्न–भिन्न हो गई । नई जगह, नए लोग, सत्संग का अभाव, ये सब परिस्थितियाँ मेरे निम्न मन को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त थीं। एकदम गहरे में दबा हुआ अहंकार, क्रोध और काम धीरे–धीरे सर उठाने लगा । अनजाने अनचीन्हें ही मैं फिर से

चिन्ता और तनाव के साए में जीने लगी । सूक्ष्म रूप से क्रोध भी मुझे आने लगा और मै अपने मन के इस परिवर्तन से कुछ भयभीत सी हो गई । निन्दा, चुगली और परदोष दर्शन ने मेरे अहंकार को अत्यधिक भड़का दिया । जीवन पुनः सुख, दुःख के झूले में झूलने लगा परंतु गुरुदेव की असीम अनुकम्पा से, मैं अपने निम्न मन को देख पा रही हूँ । दोनो परिस्थितियों का विवेचन करते हुए, मुझे नियमित दिनचर्या का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। गुरुदेव के चरणकमलों का ध्यान करने से, उनकी शिक्षाओं का मनन चिन्तन करने से, मुझे अपने अंतर में एक नूतन शक्ति का आभास हो रहा है । ग्लानि भी हो रही है स्वयं के पतन पर। परंतु अपनी इस असफलता से हतोत्साहित होने की बजाय, मैं दृढ़ निश्चय से, अपनी दिनचर्या में अनुशासन का समावेश कर पा रही हूँ ।

मुझे पूरा विश्वास है कि धीरे–धीरे मेरा निम्न मन अवश्य ही शक्तिहीन हो जाएगा और पुनः मैं उस दिव्य आनन्द और सुख का अनुभव अपने रोम–रोम में कर पाऊँगी । जीवन की इस यात्रा में, प्रत्येक व्यक्ति ऐसे उतार–चढ़ाव का अनुभव करता है, आवश्यकता है कि हम अपने मन के प्रति सजग रहें, सतर्क रहें । सजगता और सतर्कता के द्वारा अपनी दिनचर्या को जहाँ तक हो सके मानसिक रूप से दोहराते रहें । संयम की चाबुक से ही निम्न मन का हनन किया जा सकता है ।अपने अंतर के इस परिवर्तन से मैं बहुत थक गई ।

यह देहाभिमान !

जैसे ही मैं देह के अभिमान में आ जाती हूँ; इच्छा, क्रोध, लोभ और मोह के गर्त में गिर जाती हूँ। भूल जाती हूँ कि मैं एक सच्चिदानन्द आत्मा हूँ जो एक विशेष प्रयोजन से इस धरा पर आई है ।

भूल जाती हूँ कि मैं एक महान गुरु की शिष्या हूँ जिन्होंने अपना जीवन लोक सेवा में पूर्णतयाः समर्पित किया ।

भूल जाती हूँ कि देह का अभिमान छोड़ने से ही असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता मिलती है। होती नहीं जब कोई इच्छा मेरी पूर्ण तो अनजाने, अनचाहे ही क्रोध के दानव के चंगुल में फँस जाती हूँ ।

कभी क्रोध व्यक्त तो कभी अव्यक्त रूप में मेरे मन को दूषित करता है ।

भूल जाती हूँ अपनी सब साधना को और बदला लेने के अनेकों विचार करती हूँ ।

पढ़ी पढ़ाई, रटी रटाई सब शिक्षाएँ कपूर की तरह एक क्षण में उड़ जाती हैं ।

रह जाती हूँ अपने निम्न मन के साथ और सतत मानसिक उत्तेजना से घिरी रहती हूँ ।

खो बैठती हूँ चैन अपना और ध्यान के सुख से तो कोसों दूर चली जाती हूँ ।

अचानक गुरु कृपा आती है एक हवा के झोंके की तरह और मुझे झंझोड़ती है ।

गुरु कृपा की उस शीतल बयार से संसार के इस तपते रेगिस्तान में थोड़ी राहत पाती हूँ ।

करती हूँ हिम्मत दुबारा, बटोरती हूँ अपनी शक्ति को पुनः गुरु द्वारा निर्देशित अभ्यास लगन

से प्रारम्भ करती हूँ । गुरु तो मेरे पास ही हैं, मेरे साथ ही हैं, जब ऐसा अनुभव करती हूँ तो अपने अंदर एक गहन शान्ति का अनुभव करती हूँ ।

क्षमा और दया का दिव्य सद्‌गुण अपने अंदर में रोपित करते हुए, अपने सूक्ष्म क्रोध का निराकरण करने का मार्ग प्रशस्त करती हूँ ।

गुरु की जीवनी पढ़ते हुए, उससे शिक्षा लेते हुए, अपना बुरा करने वाले के लिए भी सच्चे मन से दुआ कर पाती हूँ ।

समझ पाती हूँ अपने ही अनुभव से कि देह को ही केवल सच समझने से सब दुर्गुण आ जाते हैं ।

अतः पूर्ण मनोयोग से इस देहाभिमान से ऊपर उठने के लिए गुरु से प्रार्थना करती हूँ ।

हे गुरुदेव ! मुझे आन्तरिक बल दीजिए ताकि मैं क्रोध, लोभ, मोह और मद से बच सकूँ और इस धरा पर अपना जीवन सार्थक कर सकूँ ।

रहूँ मगन सदा परोपकार में और तुम्हारे पदचिन्हों पर चलते हुए प्रभु नाम सिमरन सतत कर सकूँ । अपने कर्त्तव्यों को निभाते हुए, अपना अध्यात्मिक उत्थान कर सकूँ ।

मैं जान गई हूँ कि जिस रोज इस शरीर का अभिमान छूटेगा; असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता स्वतः मुझे मिलेगी ।

कठिन यह मार्ग सही, लम्बी यह यात्रा सही, पर अब मैं इस पर ही चलना चाहती हूँ अपनी सुख और शान्ति के लिए । मिल रही है प्रसन्नता धीरे–धीरे असीम, अनन्त !

अहंकार–एक दानव

(एक अनुभव)

जैसे ही मैं अहंकार करती हूँ, प्रभु के अनुभव से दूर चली जाती हूँ । जैसे ही मैं अहंकार करती हूँ, गुरु के अनुभव से दूर चली जाती हूँ ।

अहंकार के आते ही कर्तापन का भाव आता है । अहंकार के आते ही प्रभु मुझसे दूर चले जाते हैं ।

अहंकार के आते ही शरीर की समस्त पीड़ाओं का आभास होने लगता है । अहंकार के आते ही मन में स्वार्थ का पदार्पण होता है ।

समझने लगती हूँ स्वयं को सर्वसमर्थ, तब प्रभु की शक्ति का अनुभव मानों हाथ से छूट जाता है । रह जाती हूँ अकेली मझधार में, संसार सागर में हिचकोले खाती हूँ । कभी फँस जाती हूँ दुनिया के तूफानों में, कभी अपनी नाव को चाहते हुए भी डूबने से नहीं बचा पाती हूँ ।

डूब जाता है मेरा मन काम, क्रोध, लोभ और इच्छाओं के जाल में । फँस जाती हूँ फिर चिन्ता, दुविधाओं और परेशानियों के भँवर में । चिन्ता, क्रोध और परेशानियों के भँवर से चाहकर भी नहीं निकल पाती हूँ ।

बहुत हाथ पैर मारती हूँ । दुःखी होकर, असहाय होकर जब प्रभु को पुकारती हूँ ।

तब प्रभु आते हैं, देते हैं अपनी शक्ति का सहारा और उस भँवर से निकलने का मार्ग दिखलाते हैं ।

एकत्र करती हूँ आत्मबल अपना और बड़ी कठिनाई से धीरे–धीरे उस दलदल से बाहर निकल पाती हूँ ।

भर जाती हूँ एक गहन अपराध बोध से । भर जाती हूँ एक दिव्य नए संकल्प से ।

अहंकार मेरा सबसे बड़ा शत्रु है, अपने अनुभवों से अब मैं खूब समझ पाती हूँ ।

जब कोई प्रशंसा करता है तो अहंकार रूपी दानव सहज ही आ जाता है ।

तब परम गुरु श्री शिवानंद की शिक्षा "प्रशंसा जहर है और निन्दा गहना" बार–बार मन में दोहराती हूँ ।

गुरु की कृपा से बड़ी कठिनाई से अहंकार के दानव का अस्तित्व धूमिल कर पाती हूँ ।

अब दिलाती हूँ याद स्वयं को बार–बार कि मैं तो एक यन्त्र हूँ, यन्त्री प्रभु हैं ।

अब दिलाती हूँ याद स्वयं को बार–बार कि मैं तो एक कठपुतली हूँ, कलाकार प्रभु हैं ।

अब दिलाती हूँ याद स्वयं को बार–बार कि मैं ये शरीर नहीं हूँ ।

अब दिलाती हूँ याद स्वयं को बार–बार कि मैं एक दिव्य आत्मा हूँ ।

मैं एक दिव्य आत्मा हूँ । जो ईश्वर का ही अंश है । क्या है मेरा नाता अहंकार से ?

अहंकार तो है माया का एक दूत जो बार–बार मुझे लुभाता है । अहंकार तो है माया का एक अस्त्र जो प्रभु से दूर मुझे ले जाता है । सोचती हूँ, मनन चिन्तन करती हूँ । अपने अनुभवों से माया की शक्ति को समझ पाती हूँ ।

करती हूँ प्रार्थना उस मायापति से कि वे मुझे शक्ति दें । शक्ति दें कि मैं इस माया को समझ सकूँ ।

इस माया को समझ सकूँ और प्रभु की शक्ति से इसका सामना करते हए अपने दिव्य स्वरूप का हर क्षण अनुभव कर सकूँ ।

चाहती हूँ दर्शन करना उस प्रकाश का जो मेरे और सबके भीतर समाया है ।

चाहती हूँ डूबना अब उस दरिया में जो आनन्द और रस का सरमाया है ।

सन्त कहते हैं उस आनन्द की एक बूँद चखने से समस्त सांसारिक क्लेशों का अंत हो जाता है ।

सन्त कहते हैं उस रस की एक बूँद चखने से देह का अभिमान पूर्णतया छूट जाता है ।

सन्त कहते हैं ईश्वर तो रस का भण्डार है; आनन्द की खान है ।

फिर आज क्यों हम उनके बच्चे अहंकार रूपी दानव के चंगुल में फँसे खुद को भूले हैं ? क्यों आज मानव दानव बन बैठा है ? क्यों सत्ता, पद और धन का उसे अभिमान है ?

यही अभिमान उसे पशु बनाता है । यही अभिमान उसे मानवता से बहुत दूर ले जाता है ।

यही अभिमान उसे परमार्थ करने से बहुत दूर ले जाता है ।

यही अभिमान उसे दुःख और निराशा की गहरी खाई में धकेलता है ।

धन होते हुए भी सुख से दूर रहता है । पद होते हुए निरन्तर सुख से दूर रहता है ।
आखिर क्या चाहता है वो ? सुख या दुःख ? प्रेम या घृणा ? दुआ या बद्दुआ ?
छोड़ पाएगा जिस रोज अहंकार को, करेगा दर्शन अपने स्वरूप के ।
छोड़ पाएगा जिस रोज अहंकार को, पाएगा अनन्त सुख अपने अंतर में ।
दर्शन करेगा वृद्धों, गरीबों और जरूरतमंदों में उस सर्व–नियंता के ।
धीरे–धीरे इस माया के जाल से बाहर निकल पाएगा ।
तब होगा उसका मार्ग प्रशस्त अनन्त, सुख और शान्ति प्राप्त करने का ।
चुनना उसे है अनन्त सुख या अनन्त दुःख ?
चुनना उसे है अपरिमित आनन्द या असाध्य रोग ?
चुनना उसे है निर्वाण और मोक्ष अथवा बंधन ?

यह इच्छा !

इच्छा आती है और मुझे बार–बार परेशान करती है । रुलाती है मुझे और मेरा सहज स्वभाव भुला देती है ।
पड़ जाती हूँ मैं छल, कपट और प्रपंच में उस इच्छा को पूरी करने के लिए ।
भूल जाती हूँ धर्म को और कई बार क्रोध, असत्य और हिंसा का भी सहारा ले लेती हूँ। इच्छा छा जाती है मानस पर मेरे इस प्रकार कि उसको छोड़ कर और कुछ भी सोच नहीं पाती हूँ ।
बना देती है इन्सान से हैवान एक क्षण मे इच्छा मुझे, मेरी सहज प्रकृति से दूर मुझे ले जाती है।
क्यों करती हूँ साथ ऐसी इच्छा का मैं ?
बार–बार यह प्रश्न अब मैं स्वयं से पूछती हूँ । लेती हूँ विवेक का सहारा और इच्छा के प्रति सजग होती हूँ ।
सजगता और सतर्कता के दिव्य अस्त्र से अब इच्छा का आगमन देख पाती हूँ।
करने के लिए निराकरण उस इच्छा का बार–बार अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग करती हूँ ।
दोहराती हूँ मन में बार–बार, "यह इच्छा मुझे पागल बनाती है । यह इच्छा मुझे दुःख की गहरी खाई में धकेल देती है।"
सतर्क रहने से, अभ्यास सतत करने से अब एक हद तक इच्छा के चंगुल से बच पाती हूँ ।
करती हूँ समर्पण प्रभु के श्री चरणों में और करती हूँ प्रार्थना उनसे, "हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो । मुझे इतना विवेक प्रभु देना कि तेरी रजा में ही खुश रह सकूँ ।"
रह पाती हूँ प्रसन्न और आनन्द बनता है धरोहर मेरी, जब–जब विवेक का दामन मैं थामती हूँ ।
चाहती हूँ अब विवेक ही बने सम्पत्ति मेरी क्योंकि सुख उसमें असीमित प्राप्त करती हूँ। संतोष रूपी धन को अपनी पूँजी बना कर अब मैं चैन की नींद सोना चाहती हूँ।

यह अज्ञान !

हूँ मैं बहुत भाग्यशाली जो गुरु ने मुझे इस पावन पुनीत ज्ञान यज्ञ के लिए चुना ।
लोग जानें या न जानें, मैं तो अपना अंतर जानती हूँ । देख सकती हूँ अपने अंदर के अवगुणों को भली भाँति अब गुरु की असीम अनुकम्पा से ।
अवगुणों को देख पाने से, समझ पाती हूँ इस निम्न मन की वृत्तियाँ ।
करती हूँ प्रयास तब उन वृत्तियों के निराकरण का । देखती हूँ अपने चारो ओर लोगों को अज्ञान के अन्धकार में डूबे हुए, अपने अवगुणों से अनजान !
करती हूँ प्रार्थना श्री गुरुदेव से कि वे उन लोगों पर भी कृपा करें और उनके ज्ञान चक्षु खोलें ।
जब हम देख पाते हैं गढ्ढे को, तभी तो उससे बचने का प्रयास करते हैं, अन्यथा अन्धकार होने से तो उसमें अनायास ही गिर जाते हैं । अब करती हूँ प्रार्थना श्री गुरुदेव से एक ही कि वे इस मोह जनित अज्ञान के अंधकार को दूर करने का मार्ग दिखाएँ ।
क्योंकि अब मैं जान चुकी हूँ कि ये अज्ञान ही मेरे समस्त दुःखों का कारण है ।
गुरु कृपा से अब अपने गुणों को भी धीरे–धीरे समझ पा रही हूँ ।
गुणों पर दृष्टि जमाए हुए करती हूँ अनुभव एक गहन आत्मसंतोष का अपने अन्तर में ।
अपने गुणों को उभारते हुए, उनका प्रयोग करती हूँ अपना आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए ।
आत्मविश्वास के बढ़ने से कर पाती हूँ सामना विषम परिस्थितियों का और धीरे–धीरे काम, क्रोध और लोभ के निराकरण का मार्ग प्रशस्त करती हूँ ।
रहना चाहती हूँ अब ज्ञान के प्रकाश में और अनेकों को ये प्रकाश बाँटना चाहती हूँ । इसी सद्भावना से प्रेरित होकर अपने अनुभवों को कलमबद्ध करती हूँ ।
चाहती हूँ जन–जन प्राप्त करे ये सरल ज्ञान और भरे असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता से वह सुख, शान्ति और प्रसन्नता जो उसकी पैतृक सम्पत्ति है और जिस पर उसका सहज अधिकार है ।

यह बाधा !

बाधा आती है, मुझे सताती है, मुझे रुलाती है । और फिर प्रभु कृपा से जब मैं असहाय हो जाती हूँ तो स्वयं सुलझ जाती है ।
भेज देते हैं प्रभु किसी न किसी दूत को अपने किसी भी रूप में ।
वह दूत आता है मेरी राह के समस्त काँटे उठाता है, मेरा मार्ग निष्कंटक बना देता है ।
आते हैं प्रभु किसी रूप में और मार्ग मेरा फूलों से भर देते हैं ।
महकता रहता है बगीचा मेरे मन मानस का उन सुवासित फूलों की सुगन्ध से ।
डोलती हूँ दिन भर उस दिव्य सुगन्ध में और रात को सोती हूँ उस दिव्य अनुभव में ।
न है कहीं अन्धकार, न निराशा दूर–दूर तक । कभी–कभी विषाद मुझे मिलने चला आता है, अपनी जड़ें जमाने की असफल कोशिश करता है ।

जब नहीं होती मैं हतोत्साहित उसके प्रयत्नों से, तो स्वतः ही मजबूती का उपहार देकर चला जाता है ।

मत हो तुम दुःखी । मत हो तुम निराश ! सब कुछ तो ईश्वर करता है । ए मानव ! तू व्यर्थ में चिन्ता करता है ।

तू केवल प्रभु का यन्त्र है जिस रोज ये जान जाएगा, पहचान जाएगा , पा जाएगा मुक्ति सब दुःखों से और जीते जी ही इस धरा पर मुक्ति पा जाएगा ।

ए मानव ! तू नेक काम कर ! बाधाओं से जूझ ! स्वयं को कोशिश की आग में तपा ।

प्रभु आएँगे तुझे अपनी गोद में उठाएँगे और अपनी असीम सम्पदा का उत्तराधिकारी बनाएँगे ।

सुख, शान्ति होगी तेरी सम्पत्ति जिसमें प्रसन्नता और आनन्द के होंगे हीरे जवाहरात ।

पाकर उस सम्पत्ति को तेरा जीवन बनेगा गुलजार । फिर कहाँ का दुःख ? फिर कहाँ का विषाद ? और कहाँ की चिन्ता ?

त्याग

त्याग आखिर इन्सान किस चीज़ का करे ? धन का ? अहंकार का ? मान का ?

त्याग आखिर इन्सान किस चीज का करे ? संसार का ? भगवान का ? अभिमान का ?

त्याग करने के लिए उसके पास है ही क्या ?

त्याग तो वह कर सकता है जो मालिक हो ।

इन्सान खाली हाथ आया, खाली हाथ जाएगा । जो कुछ पाता है वह ईश्वर की कृपा से पाता है ।

पल–पल स्वयं को भरमाता है । कर्तापन के अभिमान में ही डूबा रहता है ।

अपने अहंकार को नित प्रतिदिन पोसता है और दुःख तकलीफ को दावत देता है ।

ये धन, मान, साजोसामान सब यहीं रह जाएगा जब उस ईश्वर का फरमान आएगा ।

एक क्षण में ये शरीर निर्जीव हो जाएगा ।

जब ईश्वर का अंश इसमें से निकल जाएगा ।

हे मानव! न कुछ छोड़, न कुछ पकड़ ।

जो कुछ भी जब मिलता है उसको प्रभु की कृपा समझ कर स्वीकार कर ।

तू तो एक कठपुतली है उस सर्वनियंता के हाथ में तेरा अपना इस संसार में कुछ भी नहीं ।

जिस रोज ये मान जाएगा, जान जाएगा, त्याग के अभिमान से भी छूट जाएगा ।

करेगा सिमरन दिन–रात उस सर्वनियंता का । गुण उसके गाएगा ।

बाँटेगा जो कुछ भी तेरे पास है दूसरों के साथ और हर मानव में उस ईश्वर की झलक देख पाएगा । त्याग करना है तो त्याग इस देह के अभिमान का कर ।

त्याग करना ही है तो त्याग अपने झूठे अहंकार का कर ।

त्याग करना ही है तो त्याग अपने मन की श्रेष्ठता का कर ।

सब रचना है ईश्वर की इस जगत में, कोई न बड़ा न कोई छोटा है ।

फिर कैसा अभिमान ? और कैसा अहंकार ? और कैसी श्रेष्ठता ?

न कोई नीच, न कोई ऊँच । सब हैं एक समान क्योंकि सबमें वह ही समाया है ।

ऊँचा नीचा तो सब मन की कोरी कल्पना है ।

अमीर गरीब तो सब इस माया की रचना है । पल में राजा से रंक और रंक से राजा, इन्सान बनता है । सब कुछ खो देने पर अपने ही भाग्य पर रोता है । सब कुछ पा जाने पर अपने को कर्ता मानता है ।

इस खोने और पाने के खेल में ही जीवन बीत जाता है । ये सुरदुर्लभ मानव देह यूँ ही व्यर्थ चला जाता है ।

ए मानव ! जाग तू ! समय का सदुपयोग कर ! अपने जीवन को सार्थक बना ।

फिर कैसा त्याग ? और कैसी उपलब्धि ?

मानसिक वैराग्य

वैराग्य शब्द को साधुओं और संन्यासियों के साथ जोड़ा जाता है । अधिकतर लोगों के दिमाग में वैराग्य का अर्थ है सिर मुँडा लेना, भगवे वस्त्र पहन कर झोपड़ी अथवा कुटिया में रहना । समय के बदलते हुए परिवेश के साथ वैराग्य की नई परिभाषा आज प्रत्येक व्यक्ति को समझनी जरूरी है । आज कई कपटी और धूर्त साधुओं के कारण जन–साधारण का विश्वास धर्म पर से, धर्म के ठेकेदारों पर से उठता जा रहा है । कई चालाक लोगों ने इसे व्यवसाय बना लिया है । ऐसे लोग केवल और केवल दिखावा कर सकते हैं । और समय आने पर जब उनकी पोल पट्टी खुल जाती है तो वे लोगों के धन के साथ–साथ उनके विश्वास को भी अपनी गठरी में बाँध कर नौ दो ग्यारह हो जाते हैं ।

आखिर आज व्यक्ति किसका अनुसरण करे ? चारों ओर फैली हुई कलियुग की त्रासदी में व्यक्ति को एक भी आदर्श नेता या साधु नहीं दिखता । यही कारण है कि भौतिकतावाद का अतिशय प्रकोप समाज में फैल रहा है । अगर एक साधु मोटर गाड़ी अथवा हवाई जहाज में सफर करता है तो उसे शक की दृष्टि से देखा जाता है, चाहे वह समय बचाने के लिए ही ऐसा करता है । मानसिक वैराग्य, शारीरिक वैराग्य से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । एक सच्चा साधु भोगों के बीच रहते हुए भी उनमें लिप्त नहीं होता । रामायण में भरत ने 14 वर्ष श्री राम की चरण पादुकाओं को सिंहासन पर रख कर, एक कुटिया में वनवासियों की तरह संयमित जीवन नहीं बिताया था क्या ? एक गृहस्थ भी अगर गृहस्थी में रहते हुए मानसिक रूप से सब विषय भोगों को एक क्षण में ही छोड़ देने का सार्मथ्य रखता हो; तो वह उस संन्यासी से कहीं अधिक बेहतर है जो जंगल में रहकर भी विषय भोगों का चिन्तन करता रहता है । गेरुआ

वस्त्र सच्चे सन्यासी की पहचान कदापि नहीं हो सकती । ईश्वर तो अन्तर्यामी हैं । वह मन के भाव से खुश होता है, तन पर कपड़ों के बदलाव से नहीं ।

अतः गृहस्थों को आज चाहिए कि अगर उन्हें एक सद्गुरु का चयन करना है तो धैर्य का प्रयोग करते हुए एक साधु की मानसिक वृत्तियों का अध्ययन करें कुछ समय तक । जो व्यक्ति अपना अध्यात्मिक उत्थान चाहता है वह इच्छा को रोकने का अभ्यास करे । एक इच्छा के संयम से ही क्रोध का 90 प्रतिशत तक निराकरण सम्भव है । गीता (III-40, 41) में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को कहा है कि "हे अर्जुन, यह काम (इच्छा) ही सब पापों का मूल है ।" धीरे–धीरे इच्छा का निराकरण करने से, क्रोध का आवेग कम होने लगता है, वस्तुओं को संग्रह करने की वृत्ति भी कम होने लगती है । ईश्वर कृपा प्राप्त करने का, जीवन में सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करने का इससे सरल तरीका और कोई नहीं है । साहस है तो आजमा के देखिए ।

ध्यान

आखिर एक आम आदमी के जेहन में ये सवाल अक्सर उभरता है कि ध्यान क्यों किया जाए? ध्यान क्या है ? ध्यान का शाब्दिक अर्थ है किसी भी काम को लगन से एकाग्र हो कर करना। जब हम किसी भी कार्य को पूरी तन्मयता से एकचित्त हो करते हैं तो हमारी सारी ऊर्जा उसी कार्य को सम्पन्न करने में लग जाती है । पूरी तन्मयता से किए गए कार्य का न केवल परिणाम अच्छा होता है अपितु हमें भी अत्यधिक सकून और खुशी का अनुभव होता है । उस कार्य को यदि हम लौकिक दृष्टि से देखते हैं तो उसके फल से ही अपनी योग्यता को आँकते हैं । परन्तु योग कहता है कि यदि दृष्टि फल से हटा कर कर्म पर केन्द्रित की जाती है तो व्यक्ति को अतिशय लाभ मिलता है । गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि फल का त्याग करने से अनन्त शान्ति प्राप्त होती है । (12 अध्याय, 12)

ध्यान करने की सबसे सरलतम विधि है जीवन के प्रत्येक कार्य को पूर्ण तन्मयता और एकाग्रता से करते हुए, उस कार्य के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए रखना । फल पर से दृष्टि हटाने से स्वतः ही हमारी समस्त ऊर्जा नकारात्मक अथवा संशयात्मक से सकारात्मक हो जाती है । ध्यान एक ऐसी विधा है जो धीरे–धीरे मन को प्रशिक्षित करती है एक बिन्दु पर एकाग्र करने के लिए । जब व्यक्ति योग के आसन, प्राणायाम और योगनिद्रा अथवा अन्तर्मौन जैसे सरल अभ्यास पूर्ण सजगता से करता है तो वह अपने मन को देख पाता है । वह देख पाता है कि उसके अंदर दो तरह के मन हैं । एक उच्च मन जो उसे अच्छे कार्यों की ओर प्रेरित करता है । एक नीचा मन जो उसे व्यवहार में आने वाली परिस्थितियों और व्यक्तियों की नकारात्मक वृत्तियों को बताता रहता है । इस तरह अधिकांश समय व्यक्ति का नकारात्मकता में अधिक बीतता है और सकारात्मक, सोच कहीं पीछे छूट जाती है।

और यहीं से शुरूआत होती है व्यक्ति के तनाव की और तनाव जनित दुःखों की । तनाव ही कारण बनता है उच्चरक्तचाप और मधुमेह जैसे असाध्य रोगों के आगमन का । किसी भी परिस्थिति के प्रति यदि व्यक्ति अपना दृष्टिकोण सकारात्मक रख पाता है तो मुसीबतें भी वह सरलता से पार कर जाता है । उदाहरणतया हर असफलता को यदि हम अपनी सफलता का सोपान मानते हुए दुगने उत्साह के साथ मेहनत करते हैं तो परिणाम बहुत सुखद निकलता है । ध्यान की सरल विधियों के द्वारा जब मन की विकरित ऊर्जा एकत्रित होने लगती है तो वह असंभव कार्य भी कर सकती है । स्वामी निरंजन ने लिखा है कि "एक एकाग्र मन लेजर बीम की तरह शक्तिशाली होता है । और एक विक्षिप्त मन 100 वॉट के बल्ब की तरह होता है जिसकी ऊर्जा से कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता ।"

कुछ साल पहले जब मैंने एक पुस्तक में पढ़ा, 20 मिनट का ध्यान, 7 घंटे की नींद के बराबर होता है । यह पढ़कर मैं आश्चर्यचकित हो उठी। वहीं से शुरू हुई मेरी यात्रा ध्यान करने की ।

आज व्यक्ति के पास समय की बेहद कमी है । ऐसे में यदि थोड़े ध्यान के द्वारा समय बचाया जा सके और कार्यों को सम्पन्न किया जा सके तो जीवन बेहद सार्थक ढंग से जीया जा सकता है । ध्यान के लिए जंगल में जाने अथवा गेरुआ पहन कर साधु बनने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है । भगवान श्री कृष्ण ने गीता का उपदेश अर्जुन को कुरुक्षेत्र के मैदान में दिया और समझाया कि युद्ध क्षेत्र में भी व्यक्ति अपने मन की वृत्तियों को एकाग्र करके, युद्ध जीत सकता है । आरम्भ में थोड़ा सा समय दिन में दो तीन बार देने से ही पर्याप्त है । आखिर छोटे बच्चे को भी तो धीरे–धीरे हर काम सिखाया जाता है प्यार से । इसी प्रकार व्यक्ति अगर सजगता से, नियमित रूप से एक दृढ़ निश्चय के साथ इन सरल अभ्यासों को करता है तो अपने सुखद परिवर्तन से खुद ही हैरान हो जाता है । आवश्यकता है केवल धैर्य की और सतत अभ्यास की । जीवन की नकारात्मक वृत्तियों को सकारात्मक बनाते हुए, हर परिस्थिति का सामना साहस के साथ करना और प्रसन्न रहना ही जीवन जीने की कला है । अपनी नकारात्मक वृत्तियों का निराकरण करते हुए, अच्छी शिक्षाओं को अपने जीवन में अभ्यास के रूप में परिणत करते हुए, व्यक्ति सहज ही विपरीत परिस्थितियों में भी अपना मानसिक संतुलन बनाए रख सकता है । और यही ध्यान का आरंभिक उद्देश्य है ।

विश्वास के साथ इस डगर पर बढ़ते हुए व्यक्ति एक अनिवर्चनीय आनन्द से भर उठता है । जानता है वह स्वयं को, स्वयं के स्वरूप को और कर पाता है चुनाव अपने लिए एक दिव्य राह का जो उसे असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्रदान करती है । छूट जाते हैं अवगुण स्वतः ही इस राह पर व्यक्ति के और सद्गुण उसकी सम्पत्ति बनते हैं । बन जाता है वह प्यारा सबका और यश और धन स्वतः ही उसके द्वार के सेवक बन जाते हैं । घूमती है सफलता उसके पीछे हाथ बाँधे क्योंकि उसे सफलता की न दरकार होती है । करता है अनुभव वह मुक्ति जीते जी ही और स्वर्ग की फिर कहाँ कामना बचती है ? आओ इस दिव्य पथ का चयन

करें और अपने जीवन को खुशियों से भरें ।और न केवल अपने अपितु दूसरों के जीवन में भी खुशियों के अनगिनत फूल खिलाएँ । जीवन को जीएँ पूर्णता से ईश्वर की अनमोल निधि समझकर ।न समझें इसे भार अथवा दुःखमय ।जीएँ और जीने दें ! हँसे और हँसने दें !

एक आवाहन—साधना सौंदर्य लहरी की

सौंदर्य लहरी की साधना है अध्यात्म का एक नूतन सोपान जो बेहद रोचक और सरल है।
यद्यपि मन्त्रों का उच्चारण आरम्भ में कठिन लगता है, परन्तु धीरे–धीरे सीखने से उससे नित नूतन आनन्द मिलता है ।
हैं ये मन्त्र एक दिव्य ऊर्जा के स्त्रोत ।हैं ये मन्त्र अध्यात्मिक उन्नति के सोपान ।
आरम्भ में साधक यदि मेहनत करता है और नियमित रूप से माँ पर श्रद्धा रखते हुए इन्हें पढ़ता है तो अपने अनुभवों से स्वयं ही आश्चर्यचकित हो उठता है ।
करती है माँ जगत जननी जब कृपा तो जीवन उसका दिव्य प्रेरणाओं से भर जाता है । मिलते हैं नित नूतन उपहार आत्मविश्वास और आत्मबल के उसे, जीवन एक असीम सुख और शान्ति से भरता जाता है ।
इस कलियुग में दूर हो जाते हैं उसके समस्त दुःख और विषाद, प्रसन्नता बनती है उसकी सतत सहभागिनी ।
हर इन्सान को आज क्या चाहिए ? आखिर सुख शान्ति और प्रसन्नता के लिए ही तो इन्सान हर क्षण धन कमाने का पुरुषार्थ करता है और अनेकों सुख साधन के सामान एकत्र करता है।
सौंदर्य लहरी को पढ़ते–पढ़ते उसका जीवन एक असीम आनन्द से सहज ही भर जाता है।
आज इन्सान को आवश्यकता है आत्मविश्वास की, आत्मबल की; क्योंकि आदमी का आदमी पर से विश्वास उठता जा रहा ।
क्योंकि आज बच्चा भी बेहद कड़वाहट से भरता जा रहा है । तनाव और तनाव– जनित क्रोध आज सबकी संपत्ति है और बच्चे भी उससे अछूते नहीं रहे ।चाहिए इन्सान की आत्मा को आज भोजन सत्संग और मंत्रों का ।
तभी समझेगा वह 'मैं एक दिव्य आत्मा हूँ ।मैं पृथ्वी पर एक सुनिश्चित उद्देश्य से आया हूँ ।'
जिस भी धर्म में इन्सान का विश्वास हो, व्यक्ति उस का पालन करे और नित्यप्रति सत्संग करे ।
सौंदर्य लहरी के मंत्र हैं ऊर्जा के भण्डार । जो चाहता है पाना खजाना उसको थोड़ा पुरूषार्थ तो करना ही होगा अपने लिए ।
तो आओ श्रीमत् आदिशंकराचार्य की इस रचना का हम सम्मान करें और इसे अपने जीवन एक अंग बनाएँ ।
थोड़ा सा समय अपने आत्मिक उत्थान के लिए समर्पित करें और इसी धरा पर रहते हुए हर क्षण आनन्द का अनुभव करें ।

प्राण विद्या

(परमहंस स्वामी निरजानंद सरस्वती की शिक्षाओं से)

आसन को यदि सांस की सजगता के साथ किया जाता है तो उसकी प्रभावकारी शक्ति 100 गुना बढ़ जाती है ।जिस किसी भी अंग में यदि आप पीड़ा पर अपना ध्यान कुछ देर के लिए एकाग्र करते हो तो प्राणशक्ति का प्रवाह वहाँ होने लगता है । उस प्राणशक्ति से ऊर्जा अबाध गति से बहने लगती है ।योग में ऊर्जा के प्रवाह की रुकावट को ही रोग और पीड़ा का कारण माना गया है ।प्राणविद्या एक ऐसा विज्ञान है जिससे पीड़ा का निदान तुरंत संभव है। योग के अभ्यास करते हुए शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ स्वतः ही बढ़ने लगती हैं ।अतः सांस की गिनती उस एकाग्रता को बढ़ाने में अत्यधिक सहायक होती है । जब व्यक्ति का ध्यान दूसरे विचारों से हटकर एक अंग अथवा सांस पर केन्द्रित हो जाता है तो मन को बहुत आराम मिलता है । मन की सकारात्मक शक्ति बढ़ती है । मन की शक्ति बढ़ने से उसको एक निश्चित दिशा में सहज ही प्रशिक्षित किया जा सकता है । योग में इस अभ्यास को धारणा कहा गया है ।सतत अभ्यास करने से ध्यान का मार्ग स्वतः ही प्रशस्त होने लगता है । जब मैंने आसनों को सांस की सजगता से किया तो परमहंस स्वामी निरजंन के इस कथन की सत्यता का प्रमाण मुझे अपने अनुभवों से सहज ही मिलने लगा ।अतः योगाभ्यास करते समय मन को भी एकाग्र अवश्य करना चाहिए।

ध्यान क्यों और कैसे ?

(स्वामी शिवानन्द की शिक्षाओं से)

ध्यान एक टॉनिक है ।ध्यान सब रोगों को दूर करने की सशक्त दवाई है ।यह एक ऐसी दवा है जिसका साइड इफेक्ट (प्रभाव) अनन्त सुख और प्रसन्नता है ।ईश्वर का दर्शन ही ध्यान की परिणति है ।वह ईश्वर जो प्रकाश रूप में हम सबके अंदर बसता है ।ध्यान करते–करते जब व्यक्ति समाधि में प्रवेश करता है तो उसके समस्त दुःख, चिन्ताओं और रोगों का स्वतः विनाश हो जाता है ।ध्यान के समय शरीर में ईश्वरीय ऊर्जा का प्रवाह द्रुतगति से होने लगता है ।यही ईश्वरीय ऊर्जा शरीर के समस्त अंगों और नाड़ियों को शुद्ध करती है और उन्हें स्वस्थ बनाती हैं ।यह एक सशक्त प्रक्रिया है जो पूर्णतया वैज्ञानिक है ।

ध्यान के लिए जाति, धर्म अथवा लिंग का कोई भेद नहीं है ।आप जिस धर्म अथवा गुरु को मानते हों उसी में श्रद्धा रखते हुए ध्यान के पथ पर कदम बढ़ा सकते हो ।आवश्यकता है धैर्य, लगन, नियमितता, साहस और विश्वास की ।अनुभव आए या न आए, उसकी चाहना किए बिना जो व्यक्ति श्रद्धा और विश्वास के साथ साधना करता है उसको सफलता अवश्य मिलती है ।जिन व्यक्तियों के पिछले जन्मों के अध्यात्मिक संस्कार हैं उनकी प्रगति शीघ्र होती है ।जिन व्यक्तियों के पास ये पूंजी नहीं होती उनको शुरु में अत्यधिक धैर्य रखते हुए

निराशा का सामना करना पड़ता है । और कई बार ऐसे नए साधक अभ्यासों को निरर्थक मानते हुए उन्हें छोड़ भी देते हैं । सोचना आपको है । करना आपको है । यदि धैर्य की तलवार को हाथ में लेकर, विश्वास का दामन थाम कर, आप किसी सुयोग्य मार्गदर्शक की शरण में जाते हैं तो उपलब्धि अवश्य होती है । यह सम्पत्ति व्यक्ति अपनी मृत्यु के पश्चात् अगले जन्म में भी संस्कारों के रूप में अपने साथ लेकर जाता है ।

मैं यहाँ कुछ ऐसे सरल ध्यान के अभ्यास लिखने जा रही हूँ जो beignners (नए साधकों) के लिए अत्यधिक लाभकारी हैं –

1) अपने इष्ट देवता, गुरू के चित्र पर एकटक दृष्टि से देखना तब तक, जब तक आँखें न थक जाएँ । जब आँख थक जाए तो आँखें बन्द करके अपने अंदर में उनके चित्र को देखने का प्रयत्न करना । यह एकाग्रता किसी फूल, पेड़ अथवा किसी प्रिय वस्तु पर भी की जा सकती है । योग में इस प्रक्रिया को त्राटक कहा गया है । यह एक सशक्त प्रक्रिया है जो शीघ्र ही परिणाम लाती है । श्रीकृष्ण के भक्त कृष्ण जी की तस्वीर पर, ईसा मसीह के भक्त उनकी तस्वीर पर त्राटक कर सकते हैं ।
2) लगातार छोटे अथवा दीर्घ स्वर में ऊँ का उच्चारण करने से समस्त शरीर में दैवी ऊर्जा का प्रवाह होने लगता है जो मन को एकाग्र करने में अतिशय सहायक होती है । ऊँ का उच्चारण स्वयं में एक पूर्ण साधना है यदि इसे लगातार किया जाए तो ।
3) अनन्त आकाश को एकटक देखना और अपने असीमित अस्तित्व को उससे जोड़ना । रात्रि में किसी एक तारे, चन्द्रमा अथवा आकाश के गहरे नीले रंग पर भी यह अभ्यास किया जा सकता है ।
4) ईश्वर के गुणों जैसे क्षमा, दया, करुणा इत्यादि का मनन चिन्तन करना और उनके लाभों के बारे में सतत चिन्तन करना ।
5) ईश्वर की असीम शक्तियों का चिन्तन करना और ऐसा अनुभव करना कि वो शक्तियां मेरे अन्दर भी हैं ।
6) जब ध्यान में मन भटके तो प्राणायाम अथवा कीर्तन के द्वारा उसको पुनः एकाग्र करना ।
7) संकीर्तन एक सशक्त माध्यम है मन एकाग्र करने का जो बेहद रोचक भी है । कीर्तन से भावसमाधि भी संभव है ।
8) मैं कौन हूँ ? मैं यह शरीर, मन, बुद्धि चित्त और अहंकार नहीं हूँ । मैं एक असीम, अनन्त शाश्वत आत्मा हूँ । इन वाक्यों को ध्यान के आसन में बैठ कर बार–बार दोहराना ।
9) नदी की आवाज़, वर्षा की ध्वनि अथवा घड़ी की टिक–टिक पर अपना मन एकाग्र करना ।
10) दोनों उँगलियों अथवा रूई से कान बन्द करके, अनाहत नाद ध्वनि को सुनने का प्रयत्न करना । (अनाहत चक्र पर होने वाली ध्वनि)
11) ऊँ के चित्र पर एकटक देखना और उसके उच्चारण द्वारा ऊँ के स्पंदनों का अनुभव करने का प्रयत्न करना ।

12) नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमाना । आरम्भ में कुछ सेकेंड ही करना । फिर धीरे–धीरे अभ्यास के द्वारा समय को बढ़ाना ।
13) दोनों भौंहों के बीच में दृष्टि जमाना । इस स्थान के भ्रूमध्य अथवा त्रिकुटी भी कहा जाता है । यह आज्ञा चक्र का स्थान है ।
14) आती, जाती सांस को गिनना और उसकी गति, तापमान आदि का अनुभव करने का प्रयत्न करना । यह एक अत्यधिक सरल अभ्यास है जिसे छोटे बच्चे भी कर सकते हैं ।
15) आज बाज़ार में तरह–तरह से सी॰डी॰, कैसेट आदि उपलब्ध हैं, उनकी मदद से भी ध्यान का अभ्यास सरलता से किया जा सकता है ।
16) शास्त्रीय संगीत सुनना एकाग्रचित्त होकर भी एक प्रकार का ध्यान है ।

महर्षि पतंजलि ने लिखा है कि ध्यान योग का सातवाँ चरण है, अतः उसकी सिद्धि के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा का अभ्यास अत्यावश्यक है । यम, नियम का पालन करने से व्यक्ति की नैतिक चरित्र दृढ़ होता है जो एक भवन की नींव के समान है । सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय आदि यम हैं । संतोष, ईश्वर प्रणिधान आदि कुछ नियम हैं । धीरे–धीरे अपने जीवन में व्यक्ति जब सदाचार का पालन करता है तो ध्यान के लिए अन्तर्मन तैयार होता है । आसन, प्राणायाम से शरीर स्वस्थ होता है और उसकी शुद्धि होती है । मन की चंचलता को समाप्त करने का प्राणायाम एक सशक्त अभ्यास है । प्रत्याहार जिसमें योग निद्रा और अन्तर्मौन के अभ्यास आते हैं, जो मन और इंद्रियों को अन्तर्मुखी बनाने के लिए अत्यावश्यक है । इन सब चरणों के पश्चात् धारणा आरम्भ होती जो मन की एकाग्रता का अभ्यास है । जब मन के एकाग्र होने का अभ्यास पक्का होने लगता है, ध्यान करना नहीं पड़ता, वह स्वयं सधने लगता है । और ध्यान की परिणति ही समाधि है ।

ध्यान एक संपूर्ण सजगता का अभ्यास है जिसमें व्यक्ति अपने अंदर के अनुभवों के प्रति पूर्ण सजग रहता है । साधक को चाहिए कि वह आरम्भिक अनुभवों जैसे प्रकाश आदि दिखना से अधिक उद्वेलित न हो । यदि अनुभव न आएँ तो दुःखी भी न हो । अपने अनुभवों के प्रति एक तटस्थ भाव रखते हुए, अभ्यास धैर्य और लगन से करता जाए । स्वामी निरंजन ने लिखा है "कई बार साधक अनुभवों के अहंकार में ही भटक कर रह जाते हैं । अतः अनुभवों को अधिक महत्व न देते हुए, अभ्यास पर ध्यान देना चाहिए, द्रष्टा भाव रख कर ।"

ध्यान एक संपूर्ण विज्ञान है कोई कोल कल्पित कल्पना नहीं । आज वैज्ञानिक भी इस पर अनेकों अनुसंधान कर रहे हैं और डाक्टर भी ध्यान के परिणामों को देख कर आश्चर्यचकित हैं । आज से 8 साल पहले, सन् 2001 में मुझे गठिया वात ने बुरी तरह धर दबोचा । एलोपैथिक में इस रोग का कोई इलाज नहीं है दर्दनाशक दवाईयों के अतिरिक्त । धीरे–धीरे रोग की भयावहता इतनी बढ़ी कि मैं एक पहिया कुर्सी पर आ गई । सब डाक्टरों ने जवाब दे दिया । केवल (strong) तेज दवाइयों पर ही जीवित रहने को मैं, मजबूर थी ।

और इन दवाइयों के अनेक दुष्प्रभाव मेरे शरीर पर विभिन्न समस्याओं जैसे फोड़े, आँख कमजोर होना इत्यादि के रूप में उभरने लगे । मासिक धर्म अनियमित होने से, अन्य अनेक समस्याओं का सामना मैंने किया। आज मैं 95 प्रतिशत स्वस्थ हूँ और अपना जीवन संपूर्णता से जी रही हूँ । मेरी सब दवाइयाँ छूट गई हैं । डॉक्टर हैरान हैं । लोग हैरान हैं । परन्तु मैं जानती हूँ कि यह ध्यान के अभ्यासों का ही चमत्कार है । गुरु की असीम कृपा से, उनकी शिक्षाओं पर विश्वास करते हुए, उस असहनीय पीड़ा के समय भी मैने मन्त्र जप और अनेक ध्यान के अभ्यास, कैसेट के द्वारा किए । अभ्यास आरम्भ करने के कुछ दिनों पश्चात् से ही मेरी मानसिक स्थिति में परिवर्तन मेरी फिज़ियोथेरापिस्ट (जो लड़की मुझे व्यायाम करवाने के लिए आती थी) को स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे । वह इससे अत्यधिक प्रभावित हुई और उसने भी मुझसे ये अभ्यास सीखे ।

यह लेख पूर्णतया परमगुरु स्वामी शिवानन्द की पुस्तक "ध्यान योग" से प्रेरित हो कर लिखा गया है । अपने जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों को जब मैंने स्वामी जी द्वारा लिखित परिणामों और लाभों से जोड़ा तो वे मुझे अक्षरक्षः सत्य लगे । आज प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रोग से पीड़ित है । यदि वह किसी कुशल निर्देशक से इन अभ्यासों को सीखता है और उनको नियमितता से करता है कुछ माह लगातार, तो अपने अनुभवों से स्वयं ही आश्चर्यचकित हो उठता है । स्वामी जी ने लिखा है, "हर रोज एक नियमित समय पर ध्यान करने से उसका लाभ कई गुना अधिक बढ़ जाता है । सुबह 4 से 6 बजे का समय ब्रह्म मुहूर्त कहा गया है, उस समय वातावरण सत्त्व से भरा होता है, अतः उस समय का ध्यान सर्वाधिक लाभकारी है ।" यह पथ है निर्वाण का । यह पथ है असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करने का । आवश्यकता है अदम्य साहस, विश्वास, धैर्य और लगन की । सोचना आपको है क्योंकि पाना आपको है । एक प्रयोग करो और अपने अंदर के ईश्वरत्व का अनुभव करो!

योग निद्रा के चमत्कार

योग निद्रा ध्यान का एक ऐसा अभ्यास है जिसे बच्चे भी सरलता से कर सकते हैं । बिहार स्कूल ऑफ योगा जो कि विश्व का प्रथम योग विश्वविद्यालय है, परमहंस स्वामी सत्यानंद ने मुंगेर में 1963 में स्थापित किया। योग निद्रा के प्रणेता श्री स्वामी जी ही हैं । जब वे अपने गुरु स्वामी शिवानन्द के आश्रम में रहते थे तो उन्हें एक विद्यालय की चौकीदारी के लिए नियुक्त किया गया । स्वामी सत्यानंद ने लिखा है ''रात के लगभग 3–4 बजे मेरी आँख लग जाती थी । एक रोज जब मैंने बच्चों की सुबह की प्रार्थना के मन्त्र सुने तो मुझे लगा कि वे मन्त्र मैंने पहले भी कहीं सुने हैं । बहुत कोशिश करने पर भी कुछ याद नहीं आया । उनमें से बहुत सारे मन्त्र मुझे याद भी थे। तब स्कूल के प्राध्यापक ने बताया कि जब मैं सो रहा होता था तब रोज बच्चे वे मन्त्र गाया करते थे।'' अपने इस अनुभव से ही प्रेरित होकर उन्होंने योगनिद्रा की रूपरेखा तैयार की ।

व्यक्ति के अवचेतन और अचेतन मन में करोड़ों संस्कार एक बीज की भाँति दबे रहते हैं। चेतन मन हर पल हर क्षण नई सूचनाएँ एकत्र करता रहता है एक रेडियो की तरह । ये नई सूचनाएँ धीरे–धीरे अभ्यास, आदत और फिर संस्कार में परिवर्तित हो जाती हैं । इन्सान की बहुत सारी समस्याएँ और रोग इन्हीं अचेतन और अवचेतन मन की कुण्ठाओं का परिणाम होते हैं । योगनिद्रा के अभ्यास में पहले विशेष निर्देशों के द्वारा शरीर को शिथिल किया जाता है । फिर उसकी विभिन्न भावनाओं को जाग्रत किया जाता है । मन को शक्तिशाली बनाने के लिए तरह–तरह के निर्देश दिए जाते हैं । यह एक सरल वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति चेतन से अवचेतन और फिर अवचेतन से अचेतन तक सरलता से पहुँच सकता है । यदि अभ्यास करने वाला सजगता से विश्वास के साथ निर्देशों का पालन करता है तो उसे अद्वितीय अनुभव मिलते हैं । साथ ही साथ उसके मन की कई ग्रंथियाँ स्वतः ही खुल जाती हैं ।

विषाद जनित रोगों के लिए यह एक रामबाण दवा है, अगर इसे किसी कुशल निर्देशक के निर्देशन में किया जाए तो । योगनिद्रा द्वारा सृजनशीलता को अवश्यमेव बढ़ाया जा सकता है । इस प्रक्रिया में शरीर को बहुत आराम मिलता है, अतः कमजोर मन के लोग सो भी जाते हैं । यदि व्यक्ति का मन शक्तिशाली है तो वह नींद का अतिक्रमण कर पाता है और अपने अंदर छिपी हुई दैवी सम्पदा का अवलोकन कर पाता है ।

गठियावात के भयंकर रोग से जूझने में योगनिद्रा ने मेरे जीवन में एक रामबाण दवा का काम किया । दो तीन दिन ही कैसेट से इसका अभ्यास करने के बाद मेरी मानसिक स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा था । तब मैंने अपने अनुभव से प्रेरित होकर इस अभ्यास को नियमित रूप से किया । इस अभ्यास से मुझे अत्यधिक आन्तरिक शक्ति का अनुभव होता था । अभ्यास के पश्चात् तनाव, चिन्ता और परेशानी भी एक हद तक कम हो जाती थी। मैं एक नूतन ऊर्जा से भर जाती थी ।

एक सी॰ए॰ के छात्र को भी मैंने ये अभ्यास करवाया । उस लड़के को नींद बहुत अधिक आती थी जिससे पढ़ाई के लिए समय कम रह जाता था । जब कैसेट के द्वारा उसने रात को ये अभ्यास नियमित रूप से करना शुरू किया तो कुछ ही दिनों में उसकी नींद 9 घंटे से कम हो कर सात घंटे हो गई । उसकी एकाग्रता भी बहुत बढ़ गई । ऐसा अनुभव आने के बाद उसने मुझसे कहा, "आँटी, अब मुझे आपकी बात पर सचमुच विश्वास हो गया ।"

सब पाठकों से मेरा अनुरोध है कि यदि वे अपनी आंतरिक शक्ति को बढ़ाना चाहते हैं, जीवन के संघर्ष में जीतना चाहते हैं, तो एक बार इस अभ्यास को अवश्य आजमाएँ । आज भी जीवन में कोई समस्या आने से, मैं इस अभ्यास के द्वारा बेहद आराम महसूस करती हूँ । स्वामी निरंजन ने लिखा है, ''जीवन में जब आप को कोई राह न दिखाई दे रही हो, मन चिन्ताओं और परेशानियों में उलझा हो तो योगनिद्रा करनी चाहिए ।''

योग निद्रा के द्वारा कैंसर जैसे घातक रोग का भी उपचार सम्भव है । बिहार योग भारती द्वारा किए गए प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है । कुछ वर्ष पहले मैंने योग विद्या (बिहार योग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका) में पढ़ा था कि अपोलो अस्पताल, मद्रास के 400 कैंसर रोगियों पर यह प्रयोग किया गया । जिसके परिणाम आशा से अधिक मिले। उनमें से कई रोगी आज पूर्णतया स्वस्थ हैं ।

श्री स्वामी जी के शिष्य और बिहार योग विश्वविद्यालय के परमाचार्य परमहंस स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की पूरी शिक्षा योग निद्रा में ही हुई । जब वे सो जाते थे तो श्री स्वामी जी उनके पास बैठकर विभिन्न ग्रंथों का बोल–बोल कर अध्ययन करते थे । एक ब्रह्मज्ञानी गुरु द्वार प्रदत्त इस ज्ञान को उनके योग्य शिष्य ने बखूबी ग्रहण किया । प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है ।

एक व्यस्त गृहस्थ के लिए सरल साधना

(स्वामी शिवानन्द की शिक्षाओं से)

आज कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति अत्यधिक व्यस्त है । या तो पति–पत्नी दोनों काम पर जाते हैं अथवा अधिकतर समय दूरदर्शन के विभिन्न सीरियल देखते–देखते ही व्यतीत हो जाता है । ऐसे में भला साधना/पूजा पाठ के लिए व्यक्ति समय कहाँ से निकाले ? बढ़ती हुई पाश्चात्य सभ्यता की नकल ने व्यक्ति को छुट्टी के दिन भी बाहर रेस्टोरेंट में खाना खाने अथवा घूमने जाने की आदत डाल दी है । स्वामी शिवानन्द ने लिखा है, "व्यक्ति काम करते हुए नाम जप कर सकता है, कीर्त्तन सुन सकता है । इस सरल अभ्यास का अतिशय लाभ आन्तरिक शुद्धि के रूप मिलने लगता है । यदि व्यक्ति स्वयं को यन्त्र समझता है और प्रभु को कर्त्ता, तो अहंकार के दानव का निर्मूलन स्वतः ही हो जाता है । अधिकतम व्यस्त व्यक्ति भी इस साधना को सरलता से कर सकता है और अपनी अध्यात्मिक उन्नति का पथ प्रशस्त कर सकता है ।"

जब मैंने स्वामी जी की इस सरल साधना को पढ़ा तो मुझे बहुत अच्छा लगा । घर से बाहर जाने पर प्रत्येक व्यक्ति के नियम और Routine टूट जाते हैं । दिनचर्या अस्त–व्यस्त होने से बहुदा मन खिन्न हो जाता है वातावरण की प्रतिकूलता के कारण । कुछ दिन पहले जब मुझे $1^1/_2$ महीने के लिए घर से बाहर जाना पड़ा तो मैने स्वामी जी द्वारा प्रदत्त इस सरल साधना को अपनाने का निश्चय किया । मैं अपने प्रयासों में एक हद तक सफल रही और मन की चञ्चलता के बावजूद निरन्तर थोड़ी–थोड़ी साधना करती रही । मन के किसी गहरे कोने में एक सुखद शान्ति और आत्मविश्वास का अनुभव भी किया । धन्य हैं ऐसे सद्गुरु जो व्यस्त से व्यस्त गृहस्थ के लिए ऐसी सरल साधनाएँ बताए हैं । मेरा पाठकों से अनुरोध है कि अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए इस सरल साधना का अभ्यास करें और अपने जीवन में असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव करें ।

पुरुषार्थ और साधना

आज कलियुग में अधिकतर व्यक्ति किसी न किसी शारीरिक, मानसिक व्याधि से ग्रस्त हैं । जो व्यक्ति इन व्याधियों से बचे हुए हैं, वे अपने ही मोह, आसक्ति, अंहकार और इच्छाओं के जाल में जकड़े हुए हैं । परिणाम – चिन्ता, परेशानी और निराशा । ध्यान एक सशक्त विकल्प के रूप में उभर कर सामने आया है । विभिन्न संचार के साधनों जैसे अखबार, दूरदर्शन आदि पर भी इसका प्रचार अनेक व्यक्ति निरंतर कर रहे हैं । उन प्रचारकों में से कुछ तो सच्चे संत हैं जिन्होंने लोक कल्याण के लिए अपना जीवन समर्पित किया हैं । और बाकी हैं व्यापारी, जो आज के फैले हुए निराशावादी माहौल का नाजायज फायदा उठा रहे हैं । ऐसे व्यापारी ध्यान को एक पैकेज (Package) के रूप में प्रस्तुत करते हुए अनेक व्यक्तियों के अपने जाल में फँसा रहे हैं ।

यद्यपि ध्यान एक सुनिश्चित साधन है असीम सुख, शांति और प्रसन्नता प्राप्त करने का, तथापि ध्यान के इस पथ पर चलना इतना सरल भी नहीं है । नियमित अभ्यास बिना थके, निश्चित समय पर विश्वास के साथ वर्षों करने से ही सार्थक परिणाम व्यक्ति को मिलते हैं । इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि व्यक्ति डर जाए और डर कर प्रयत्न ही न करें, परन्तु यह दिमाग में रखना आवश्यक है कि जब संसार की सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए दिन–रात एक करना पड़ता है, फिर ये तो अध्यात्मिक संपदा है जो एक जन्म से दूसरे जन्म में भी व्यक्ति के साथ जाती है । क्रोध, लोभ ईर्ष्या, मोह और आसक्ति जैसे दुर्गुणों के व्यक्तित्व में रहते हुए ध्यान के मार्ग पर अधिक आगे बढ़ना सम्भव नहीं है । ध्यान कोई गोली नहीं है जिसे हम पानी के साथ निगल लें और सुख–शांति प्राप्त कर लें ।

ईश्वर सर्वव्यापी और अन्तर्यामी है । हमारी एक–एक गतिविधि और विचारधारा उसकी नजरों से बच नहीं सकती । ऐसा सोच कर, मान कर और विश्वास करके, जब व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के छिपे हुए शैतानों का निराकरण करने का बीड़ा उठाता है, तभी ईश्वरीय कृपा उस पर बरसती है । अपने दोषों को देखना, जानना और पूर्णरुपेण स्वीकारना आसान तो नहीं है, ऐसे समय में आत्मनिरीक्षण का समय किसको है ? सही, गलत तरीकों से व्यक्ति सफलता प्राप्त करना चाहता है और समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखना चाहता है । सारा समय इसी उधेड़बुन में निकल जाता है, फिर शुद्धि का समय कहाँ ।

परमगुरु स्वामी शिवानन्द ने लिखा है ''निःस्वार्थ सेवा के बिना शुद्धि संभव नहीं है । एक शुद्ध मन में ही ध्यान के अनुभव प्राप्त होते हैं । निश्चित समय पर किए गए नियमित अभ्यास के साथ–साथ सेवा अत्यधिक आवश्यक है । जब व्यक्ति अपने परिवार से बाहर निकल कर अनजानों की सेवा करता है, भाव से, तब धीरे–धीरे उसके जन्मों के संचित कर्मो का क्षय होता है और वह ईश्वर की कृपा का पात्र बनने के योग्य बनता है ।'' सेवा में निःस्वार्थ भाव आरम्भ में लाना अत्यधिक कठिन है परन्तु धीरे–धीरे ईश्वर की कृपा से स्वतः ये भाव

आने लगता है।

एक साधारण व्यक्ति के लिए क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या और आसक्ति को छोड़ना भी अत्यधिक दुष्कर कार्य है। परन्तु नियमित स्वाध्याय, मनन और चिन्तन के द्वारा व्यक्ति धीरे–धीरे इन दुर्गुणों को कम कर सकता है। ईश्वर कृपा, गुरुकृपा ध्यान के लिए अत्यधिक आवश्यक है। कृपा के बिना साधक अधिक प्रगति नहीं कर पाता। मार्ग में अनेक बाधाएँ उसे डराती हैं, शैतानी वृत्तियाँ उसे नीचे खींचना चाहती हैं, ऐसे में गुरु एक चट्टान की तरह उसका मनोबल बढ़ाते हैं और उसके लड़खड़ाते हुए कदमों को अपनी दया, करुणा और कृपा का सम्बल प्रदान करते हैं। ऐसा व्यक्ति गुरुकृपा के फलस्वरुप अपनी खोई हुई आस्था को पुनः जागृत करता है और दुगुनी शक्ति से इस मार्ग पर कदम बढ़ाता है। अनेकों बार आलस्य व्यक्ति को घेर लेता है, हिम्मत साथ छोड़ने लगती है, ऐसे में वायु के विपरीत बहाव में आगे बढ़ने के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता होती हैं। स्वामी शिवानन्द ने लिखा है, ''मैं तुम्हें मार्ग बता सकता हूँ, कदम तो तुम्हें ही रखना होगा। मैं तुम्हारे लिए चल नहीं सकता।'' ऐसे समय में पुरुषार्थ की उपयोगिता समझ आती है। कई साधक गुरु न मिलने और अनुभव न आने से भी हतोत्साहित हो जाते हैं। परन्तु मेरा यह मानना है कि शिष्य की तैयारी पूरी हो जाती है तो गुरु उसके जीवन में स्वयं आ जाते हैं, एक स्नेहमयी, करुणामयी माँ की तरह। और जब तक ऐसा नहीं हो जाता, धैर्य के साथ, ईश्वर को गुरु मान कर पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। कई बार जमाना ऐसे लोगों को सनकी भी कहता है। परन्तु ध्यान के मार्ग पर चलने वाला सनकी नहीं होता क्योंकि इस मार्ग पर चलने की योग्यता भी ईश्वर कृपा से ही प्राप्त होती है।

क्रोध और ध्यान

क्रोध एक ऐसा दुर्गुण है जो आज बड़ों बूढ़ों से लेकर बच्चों को भी अपनी चपेट में ले चुका है और भाग्य की विडम्बना तो देखिए कि कई व्यक्ति तो क्रोध को वीरता की निशानी समझते हैं और इसका प्रयोग धड़ल्ले से दूसरों पर अपना वर्चस्व जमाने के लिए करते हैं। अन्य कई लोग इसको अपनी दिनचर्या का स्वभाविक अंग मान चुके हैं। क्रोध को गोस्वामी तुलसीदास जी ने नरक का एक द्वार बताया है।

गीता (II–62, 63) में भगवान श्री कृष्ण नें इच्छा को क्रोध की उत्पत्ति का कारण बताया है जिससे स्मृति नष्ट हो जाती है। परमहंस स्वामी निरंजन ने क्रोध को एक बीमारी बताया है।

क्रोध की हानियाँ सर्वविदित हैं शरीर पर। पर कितने लोग जानते हैं कि ध्यान के लिए क्रोध अत्यधिक घातक है। स्वामी सत्यानंद ने लिखा है, ''क्रोध करने से मानस पर विषम चित्र बनते हैं जिनसे ध्यान लगना, मन एकाग्र होना लगभग असंभव है।'' साधना करते करते मैंने उनके इस कथन को अक्षरक्षः सत्य पाया। जिस दिन भी मैं क्रोध करती हूँ (कारण चाहे कुछ भी क्यों न हो) उस दिन और अगले दिन मन एकाग्र नहीं हो पाता। जब मन

एकाग्र नहीं होता तो बहुत दुःखी हो जाती हूँ क्योंकि मुझे ध्यान में मन के एकाग्र होने से जो आनन्द मिलता है उससे मैं वंचित रह जाती हूँ। अतः साधकों और ध्यान के मार्ग पर कदम रखने के इच्छुक व्यक्तियों से मेरा अनुरोध है कि वे क्रोध के इस रोग का निवारण करने का वृहद प्रयास करें। क्रोध एक आसुरी शक्ति है जो हमारी दैवी शक्तियों पर हावी हो जाती है और हमें अपने अन्दर के देवत्व से जुड़ने नहीं देती है।

यदि हम ध्यान के द्वारा सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें क्षमा दया और करूणा जैसे दैवी गुणों को अपने भीतर रोपित करने का सतत प्रयास करना ही होगा। क्रोध हमारी बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है और अनेकों बार उन क्रोध के क्षणों में हम इन्सान से हैवान बन जाते हैं और बाद में अपने कृत्यों अथवा वचनों पर पछताते भी हैं। तो आओ क्रोध के इस दानव की शक्ति क्षीण करें और अपने अन्दर के देवत्व से जुड़ें। प्राप्त करें वह सुख, शान्ति प्रसन्नता और दिव्य आनन्द जिस पर हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और परमेश्वर के दिव्य उपहारों को अपनी झोली में समेंटे।

चेतना का स्तर

चेतना के उच्च स्तर पर अस्तित्व का महत्व कोई रह नहीं जाता ।
चेतना के निम्न स्तर पर केवल और केवल शरीर का ही भान रहता है ।
शरीर को ही मैं मानते हुए, व्यक्ति संपूर्ण जीवन व्यतीत कर देता है ।
खो जाता है इन इन्द्रिय रसों में, विषय भोगों में । एक अनजाने, अनकहे सुख की तलाश में ही वह जीवन व्यतीत करता है ।
रहती है व्यथा निरन्तर, दिन–रात मन के अंदर । क्या है ऐसा जो मैं चाहता हूँ? क्या है ऐसा जो मुझसे छूट रहा है?
इस दुविधा में ही संपूर्ण जीवन बीत जाता है । खो जाती है यह मानव देह विषयों को भोगते–भोगते ।
जर्जरित हो जाती है यह मानव देह, इन विषयों को भोगते–भोगते ।
नहीं छूटता अहंकार, काम और क्रोध । रहता है पशुवृत्तियों का साथ निरन्तर ।
पशुवृत्तियों के रहते भला ईश्वर का अनुभव कैसे सम्भव है?
पशुवृत्तियों के रहते भला ईश्वर कृपा का अवतरण कैसे सम्भव है?
गर मानव को सतत, निरन्तर सुख पाना है तो खुद से जुड़ना ही होगा ।
सतत शान्ति और प्रसन्नता को प्राप्त करने के लिए संपूर्ण विश्व को अपना परिवार समझना ही होगा ।
स्वार्थ के रहते हुए, नहीं हो सकता सुख और शांति का अनुभव ।
स्वार्थ के रहते हुए, नहीं हो सकता अपने अंदर के ईश्वरत्व का अनुभव ।
सेवाभाव के आते ही खुल जाएँगे सब बन्धन । न केवल बन्धन खुलेंगे अपितु मिलेगी मुक्ति ।

मुक्ति संसार के दुःखों से, रोगों से, भोगों से। हो जाएगा जीवन ये सार्थक, इसी धरा पर, इसी संसार में ।

मेरा मन–मेरी शक्ति

देखती हूँ रात–दिन अपने मन को रजस और तमस में घिरते हुए ।
देखती हूँ रात–दिन अपने मन को इच्छाओं और तृष्णाओं के भँवर में डोलते हुए ।
कभी धन की इच्छा, तो कभी मान सम्मान की । है भीड़ बड़ी भारी मन के अंदर क्रोध, चिन्ता और तनाव की ।
क्या करूँ ? कैसे उबरूँ ? दिन–रात यही पुरुषार्थ करती हूँ जब इस मन की चाल को देख पाती हूँ ।
है एक यह गहरा सागर तृष्णा का जिसमें हैं भँवर बड़े गहरे–गहरे ।
है एक यह ऐसा दलदल जो मुझे दिन–रात नीचे धँसाता है । कितनी भी कोशिश करूँ, यह मन अपनी पुरानी चाल से नहीं टलता है। जब मैं थी व्यथित और दुःखी इस मन की चालबाजियों से, मेरे जीवन में एक सद्गुरु आए । एक ऐसे सद्गुरु आए जो स्वयं ब्रह्मज्ञानी हैं।
एक ऐसे सद्गुरु जिन्होंने जन कल्याण के लिए ही जीवन समर्पित किया है।
बहुजन हितायः बहुजन सुखायः ही जिनका नारा है ।
ऐसे सद्गुरु के आने से, मुझे जीवन के मरूस्थल में मानों एक अमृत का कलश मिला ।
उस कलश की एक बूँद चखने से ही, मेरा जीवन हुआ मालामाल !
उस कलश की एक बूँद चखने से ही, मेरा जीवन हुआ दिव्य !
उस कलश की एक बूँद चखने से ही, मेरा जीवन हुआ धन्य !
नत मस्तक हुई मैं उनकी सरल शिक्षाओं से; क्योंकि अपने अनुभव से मैंने जाना कि मैं धीरे–धीरे शान्ति, प्रसन्नता और सुख की ओर बढ़ रही हूँ ।
यह मन तो सेवा में लगाने से सेवा में लगता है । अतः इसे मैंने सेवा में लगाया और अपने जीवन के उद्धार का मार्ग प्रशस्त किया।
यह मन तो प्यार में लगाने से प्यार में लगता है । अतः इसे मैंने छोटे बच्चों को प्यार करना सिखाया ।
यह मन तो दान करने से अत्यन्त खुश होता है । अतः इसे मैंने गरीबों की जरुरतें पूरी करने में लगाया ।
गुरु के इस मंत्र से निम्न मन की चाल अब धीमी हो चली । कभी–कभी धोखा देता है ।
गर सतर्क मैं रह पाती हूँ तो शीघ्र ही इसकी लगाम सेवा, प्यार और दान की ओर मोड़ पाती हूँ।
अपनी दिशा बदल देता है यह मन और नियन्त्रण में मेरे आ जाता है ।

ले जाता है अनन्त सुख, शान्ति और प्रसन्नता की डगर पर ।
यह डगर एक ऐसी डगर है जिस पर देवी–देवता खड़े हैं अपने आशीर्वाद लुटाने के लिए ।
और धीरे–धीरे ये मन मेरी शक्ति बनता जाता है ।

मेरी शल्य चिकित्सा

स्वामी सत्यानंद की प्रेरणा से

सत्यकथा

जब मैं सन् 2006 के शतचण्डी यज्ञ में रिखिया गई तो मुझे इस बात का जरा भी आभास नहीं था कि मैं बिल्कुल बदल जाऊँगी । गुरु कृपा के अनेक लेख पढ़ने के बावजूद, मैं गुरु कृपा के औचित्य को अपने अनुभव के द्वारा ही समझ पाई । मुझे ऐसा लगता है कि हम में से अधिकांश लोग इस बात से सहमत होंगे ।

श्री स्वामी जी ने अपने प्रवचन में बार–बार दोहराया कि मैं एक अच्छा हृदय चिकित्सक हूँ । हम सब उनकी यह बात सुन कर हँस–हँस कर बेहाल हो रहे थे । उन्होंने अनेक उदाहरण भी दिए, परन्तु ठीक से समझ नहीं आया । मैंने एक दिन रिखिया में बाहर से कमल के कुछ फूल खरीदे, महज गरीब और छोटे बच्चों की मदद करने के लिए । उस दिन प्रसाद वितरण के कारण हम सब की पंक्ति श्री स्वामी जी के सामने से निकली । अचानक मैंने वे फूल गुरु जी के चरणों में समर्पित करते हुए यह भाव किया कि 'यदि आप एक अच्छे शल्य चिकित्सक हो तो मेरी भी चिकित्सा कर दो ।'

मैं घर आकर इस बात को भूल चुकी थी । परन्तु धीरे–धीरे मेरी आसक्ति के बंधन खुलने लगे । मुझे अपना प्रिय सामान भी बाँटना अच्छा लगने लगा । मेरा हृदय एक अनिवर्चनीय करुणा से भर उठा । गरीब व्यक्ति की व्यथा मुझे अत्यधिक आहत करने लगी । दान दिए बिना मैं बेचैन होने लगी । आसक्ति और मेरे बीच संघर्ष होने लगा । परन्तु गुरु कृपा के कारण जीत मेरी ही हुई । और देने के बाद मुझे अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हुआ!

अपने बदलाव से मैं बहुत प्रसन्न हूँ । मेरी अध्यात्मिक प्रगति ने एक नई उड़ान सहज ही भर ली है । देने के पश्चात् ही मैं इस साधारण सी लगने वाली शिक्षा का गूढ़ अर्थ समझ पाई । सबसे पहले तो यह प्रयोग मैंने अपनी नौकरानी पर ही किया । वह मेरा काम भी बहुत खुशी से करने लगी, अतिरिक्त भी ! मेरे पति को जब कुछ काम से कुछ दिनों के लिए बाहर जाना पड़ा, तो वह सहज ही मेरा ख्याल रखते हुए, अपने पति से सब्जी मँगवाने लगी। रात को घर के सब ताले भी स्वयं अपनी जिम्मेवारी से बन्द कर देती थी । सामान कम होने से मेरा बहुत सारा समय; जो उस सामान की देखभाल में व्यर्थ जाता था, वह भी बचने लगा । मुझे 'आम के आम, गुठलियों के दाम' वाली कहावत अक्षरक्षः फलित होती दिख रही है !

मन की दिशा

(सत्यकथा)

अपने गुरु परमहंस स्वामी सत्यानंद की शिक्षाओं को पढ़ने के पश्चात्, मैंने आत्मनिरीक्षण का निश्चय किया प्रतिदिन । दिखने में इतनी सरल सी शिक्षा का नियमित अभ्यास रात को सोने से पहले 5–10 मिनट करने का, इतना सुखद परिणाम होगा; इसकी तो मैंने कल्पना नहीं की थी । ठीक से मुझे याद भी नहीं कि मैं इसको कितने समय से कर रही हूँ; शायद 1 वर्ष से । आत्मनिरीक्षण करने से धीरे–धीरे मुझे अपनी गलतियों का पता लगने लगा । मेरा परिचय अपने अन्तर से होने लगा । यह पढ़ कर आपको आश्चर्य होगा । परन्तु कठोर सत्य यही है । हम स्वयं को तो जानते नहीं पहचानते नहीं; और दूसरों को पूरी तरह जानने का, समझने का दावा करते हैं ? हम अपना अधिकांश समय दूसरों की गलतियाँ निकालने में ही व्यतीत करते हैं । असफलता को अस्वीकार करते हुए; किसी अन्य पर दोषारोपण करने का एक अवसर भी नहीं चूकते । अनेकों बार वास्तविकता इसके विपरीत होती है ।

इस सरल अभ्यास से मुझे अपने अवगुणों का पता लगने लगा । मेरी दृष्टि दूसरों से हट कर स्वयं पर केन्द्रित हो गई । मनन करते हुए मैने अपने अवगुणों का निराकरण करना आरम्भ किया । परन्तु यह इतना आसान है क्या ? वह मन जो सदा दूसरों की निन्दा चुगली में ही आनन्द लेता था वर्षो से; बार–बार विरोध करने लगा । बर्फ के टीले पर खड़े होकर जिस प्रकार हम बार–बार फिसल कर गिरते हैं; वही स्थिति का सामना मैं कर रही हूँ आज भी । एक कदम आगे बढ़ाती हूँ, परन्तु सजगता, सतर्कता की डोर, कब हाथ से फिसल जाती है पता ही नहीं चलता; और निन्दा, क्रोध कर बैठती हूँ । तनाव और चिन्ता का शिकंजा पुनः–पुनः मेरे अस्तित्व को एक अजगर की भाँति जकड़ लेता है । श्री स्वामी जी ने लिखा है ''असफलता से घबराओ मत । हजार बार गिरने के पश्चात् भी हिम्मत मत हारो । उठो और फिर चलो ।''

उनकी यही शिक्षा एक मजबूत स्तंभ की तरह पकड़ने से; मैं एक हद तक सफल हो पा रही हूँ । परन्तु धैर्य अनेकों बार साथ छोड़ने लगता है । अब इस साधना के अतिशय लाभ मुझे स्वादिष्ट फलों की भाँति मिलने लगे हैं । उदाहरणतया मेरा मन केवल और केवल सेवा के विषय में सोचने लगा है । दूसरे के अवगुण देखता है, पर उनका मनन नहीं करता । सामने वाले व्यक्ति का दृष्टिकोण समझने का प्रयास करते हुए, अपना भी निरीक्षण कर पाता है । यदि असफलता वाकई दूसरे की वजह से मिली है; तो आत्म ग्लानि से सहज ही बच जाती हूँ । अर्न्तमन से एक भारी बोझ जो अपराध बोध के रूप में रहता था; वह हट गया है ।

अब निन्दा, चुगली, क्रोध और तनाव धीरे–धीरे मेरा दामन छोड़ने लगे हैं । उनकी शक्ति धीरे–धीरे कम होने लगी है । मेरा मन पूर्णतया सकारात्मक हो गया है । अपने परिवार में रहते हुए, अपने दैनिक कार्यो को करने के पश्चात् भी, मेरे पास निस्वार्थ सेवा के लिए ऊर्जा

बच जाती है । और आश्चर्य की बात तो यह है कि मन इसको बहुत पसन्द कर रहा है । एक अनोखी प्रसन्नता से मेरा तन, मन आप्लावित हो उठा है । यह प्रसन्नता पूरा समय मेरा व्यक्तित्व निखार रही है, संवार रही है । मुझे अपने चारों ओर एक दिव्य वातावरण का अनुभव सहज ही होने लगा है । मनोरंजन के अप्राकृतिक साधनों की मुझे अब कोई जरूरत महसूस नहीं होती । मैंने दूरदर्शन देखना पूर्णतया छोड़ दिया है । और अब इच्छा भी नहीं होती ! कुछ वर्ष पहले मैंने एक पंजाबी भजन सुना था, उसकी एक पंक्ति मुझे याद है जो आज अपने अनुभव से मुझे पूर्णतया समझ आ रही है ।

जो मन दीयां वागां मोड़ दे, ऐसा कोई संत मिले । (अर्थात जो मन की दिशा बदल दे ।)

मेरी अध्यात्मिक यात्रा के मुख्य पड़ाव

सन् 1993 में जब मैं कमरदर्द के निदान के लिए ज्ञान दर्शन योगाश्रम में आई तो मैं जानती भी नहीं थी कि अध्यात्म नाम का भी कोई शब्द होता है । योग के आसन और प्राणायाम के साथ–साथ आश्रम में होने वाले छोटे–छोटे ध्यान के अभ्यासों से मुझे न केवल शारीरिक आराम मिलने लगा वरन् मैं एक अकथनीय आत्मविश्वास और उर्जा से भर उठी । 9 वर्षो से कमर दर्द सहते–सहते मैं जीवन के प्रति निराश हो चली थी । परंतु अपने जीवन में आए इस नूतन परिवर्तन से मैं खुशी से झूम उठी । इतने सरल अभ्यास और इतना वृहद परिणाम ! अपने ही अनुभवों से मैं आश्चर्य चकित हो उठी ।

यह मेरी यात्रा का प्रथम पड़ाव था । मैं एक अद्वितीय मानसिक और भावनात्मक आह्लाद से भर उठी थी । और तब मैंने सोचा कि अब मैं कभी बीमार नहीं पड़ूँगी । ऐसा सोच कर $1\frac{1}{2}$ वर्ष के पश्चात् मैंने आश्रम जाना बन्द कर दिया । घर में कुछ ही समय तक मैंने नियमित रूप से अभ्यास किए, फिर धीरे–धीरे आलस्य के कारण वे अभ्यास छूटने लगे । जिस प्रकार एक मशीन को देखभाल के लिए उसको नियमित रुप से तेल देना पड़ता है, साफ करना पड़ता है ; अंदर से मरम्मत (Servicing) करानी पड़ती है, उसी प्रकार शरीर के अंदर नाड़ियों की भी शुद्धि आवश्यक है । अब अभ्यास छूटने लगे, तो शरीर में ऊर्जा भी स्वतः कम होने लगी और जीवन में फिर वही तनाव, परेशानियाँ और चिन्ताएँ अपनी पैठ बढ़ाने लगी । सन् 1997 में मुझे एक घुटने में बहुत सख्त दर्द हुआ । डॉक्टर को दिखाने से पता चला कि यह गठिया वात की शुरुआत थी । मैं बहुत डर गई । अपने पुराने अनुभवों से मैं जानती थी, समझती थी कि योग से ही मेरा निदान है । अतः मैंने पुनः योगाश्रम जाना प्रारंभ किया । और तब एक दिन अन्तर्मौन के अभ्यास में मेरा अध्यात्मिक जागरण हुआ । ये मेरे जीवन का एक सुनहरा दिन था । उस सुख को पाकर मैं अधीर हो उठी । कभी–कभी लगता कि कहीं ये मेरे मन का वहम तो नहीं । परन्तु स्वामी देवशंकरानंद जी के कुशल निर्देशन में, मेरी अध्यात्मिक यात्रा द्रुत गति से प्रगति करने लगी ।

यह मेरी अध्यात्मिक यात्रा का दूसरा पड़ाव था । उन छोटी–छोटी साधनाओं में

मुझे बहुत रस आने लगा, आनन्द मिलने लगा। लिखित मन्त्र, माला से जप, कीर्तन सुनना आदि मेरे जीवन के महत्वपूर्ण अंग बन गए। मेरी कई सहेलियाँ मुझ पर हँसती और कहती, "अब तो ये संन्यास ले लेगी।" मैं विचलित हो जाती, जाकर स्वामी जी से पूछती तो वे बहुत हँसते और कहते, ''अजी नहीं सन्यास लेना क्या इतना आसान हैं।आप बिल्कुल ठीक रास्ते पर जा रही हैं।" उनके आश्वासन देने से पुनः दुगुने उत्साह से अभ्यास करने लग जाती। मेरी एक सहेली की माता जी भी इस राह पर चल रही थीं। जब मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने कहा, ''रास्ता तो एक ही है। सबको इसी रास्ते पर आना है। तुम जल्दी आ गई हो, वे सब बाद में आएंगी।'' उनके इस कथन से, मैं एकदम निश्चिंत हो गई और धीर–धीरे मेरे अपने अनुभव, मेरे मार्गदर्शक बनने लगे। ईश्वर की असीम अनुकम्पा और गुरु की अनवरत कृपा से मेरी जिज्ञासा दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी और जीवन एक नूतन आनन्द से भर उठा।

तब स्वामी देवशंकरानन्द ने मुझे स्वाध्याय के लिए प्रेरित किया और उनकी आज्ञा मान कर मैंने बिहार विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका की आजीवन सदस्यता ग्रहण की । उन्होंने योग विद्या के कुछ पुराने अंक (Issue) मुझे पढ़ने के लिए दिए । उनमें स्वामी सत्यानंद के लेख मुझे बहुत पसंद आने लगे । उनके एक लेख नें मेरे जीवन की धारा पूर्णतया बदलने में अहम् भूमिका निभाई ।स्वामी सत्यानंद ने लिखा, "मेरी शिक्षाओं पर तुम प्रयोग करो, यदि तुम्हें अनुभव आता है तो मेरी शिक्षा मानना, अन्यथा छोड़ देना।" ये शिक्षा पढ़ कर मैं जोश से भर उठी और मैंने सोचा, "ये एक सच्चे संत हैं जो अपनी शिक्षाओं को किसी पर लाद नहीं रहे हैं बल्कि चुनौती दे रहे हैं ।" तब मैंने आंतरिक रूप से उन चुनौती को स्वीकार किया। मेरे अंदर का वैज्ञानिक जाग उठा और मैंने उनकी शिक्षाओं पर प्रयोग करने शुरु किए ।

ये मेरी अध्यात्मिक यात्रा का चौथा पड़ाव था ।गुरु की असीम कृपा का अनुभव करते हुए, उनकी अनेक शिक्षाएं मेरे जीवन में अक्षरक्षः सत्य होने लगी । अपने अनुभवों से, मैं आश्चर्यचकित हो उठी । और तब मैंने मानसिक रूप से स्वामी सत्यानंद को गुरु स्वीकार किया । स्वामी देवशंकरानन्द समय–समय पर रिखिया पीठ और मुंगेर की बहुत सारी गतिविधियों की चर्चा करते रहते और गुरु जी के जीवन के बारे में भी अनेकों कहानियाँ सुनाते रहते थे । तब स्वामी सत्यानंद के साधकों को लिखे गए पत्रों के संकलन की पुस्तक 'योग साधना' मैंने पढ़नी शुरु की । इस पुस्तक से मुझे अनेक ज्ञान के हीरे मिले जिन्होंने मेरा सशक्त अध्यात्मिक मार्गदर्शन किया । अनेकों बार मेरे विचलित, डगमगाते मन को शान्त और स्थिर करने में इन शिक्षाओं ने एक अहम् भूमिका निभाई । इतनी कृपा मिलने से अक्सर मेरे अंदर अभिमान भी आता । परंतु स्वामी देवशंकरानन्द के कुशल निर्देशन में वो अहंकार कपूर की भांति उड़ जाता । धीरे–धीरे रिखिया जाने की इच्छा बलवती होने लगी । और तब परमहंस स्वामी निरंजन के दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।

ये मेरी अध्यात्मिक यात्रा का पाँचवा और महत्वपूर्ण पड़ाव था। स्वामी निरंजन के

दर्शनों और सत्संग से मेरे मन के किसी गहरे कोने में असीम शान्ति का प्रादुर्भाव हुआ । मैंने उनसे अपनी जिज्ञासाओं का समाधान भी किया । उनके प्रथम सान्निध्य से प्राप्त उस दिव्य अनुभूति को आज भी मैं भूल नहीं सकती । मुझे लगता है मानों वह कल की ही बात थी ।तब मेरी अध्यात्मिक प्रगति को एक नई दिशा मिली, परंतु रिखिया जाने की प्यास और अधिक बलवती हो उठी । इसी संघर्ष में समय अपनी गति से भागता रहा । तब सन् 2005 नवम्बर में, मुझे गुरु की असीम अनुकम्पा से रिखियापीठ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

स्वामी निरंजन की असीम अनुकम्पा का अनुभव मुझे अंदर तक एक आनन्द से भर गया। मेरे अनेकों प्रश्नों का उत्तर, मुझे बिना पूछे ही मिल गया । उन्होंने अपनी कृपा से मेरा प्याला भरा नही अपितु भर कर छलका दिया । सबसे अधिक महत्वपूर्ण था मेरे पति का वहाँ जाना और स्वामी जी के दिव्य व्यक्तित्व से प्रभावित होना । स्वामी जी ने मुझे मेरी कमजोरियों को दूर करने का निर्देश देते हुए, आगे की साधना का स्पष्ट आदेश सहज ही दे दिया। इतनी कृपा पाकर मैं अभिभूत हो उठी। पूरी श्रद्धा से मैं उनके श्री चरणों में नतमस्तक हुई क्योंकि इतने व्यस्त होने के बावजूद उन्होंने मुझे और मेरे पति को 35 मिनट का कीमती समय जो दिया था।

सन् 2006 नवम्बर में मुझे रिखिया पीठ के शतचण्डी यज्ञ में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । और तब पहले ही दिन स्वामी सत्यानंद के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ । यह मेरी अध्यात्मिक यात्रा का छटवाँ पड़ाव था । कल्पनातीत ऊर्जा का अनुभव प्रतिक्षण मैंने श्रीस्वामी जी की उपस्थिति में किया । उस ऊर्जा ने मेरे रोम–रोम को आप्लावित कर दिया । उनके दिव्य सत्संगों को आत्मसात करते, देवी माँ की कृपा को ग्रहण करते–करते 5 दिन का समय मानों पंख लगा कर उड़ गया । अनेकों दिव्य अनुभव मैंने अपनी झोली में एकत्रित किए ।

सन् 2006 अक्टूबर माह में अन्तः प्रेरणा से मैंने अपना पहला लेख ''हीलिंग पॉवर ऑफ फेथ'' (विश्वास की रोग निवारक शक्ति) लिखा। आत्मविश्वास की मुझमें बहुत कमी थी। परन्तु मेरा वह लेख न केवल बहुत अधिक पसन्द किया गया अपितु उसको टाईप करवाने के बाद अनेकों लोगों को वह बाँटा गया । तब गुरु कृपा से मैं द्रुतगति से लिखने लगी । ये लेख कई लोगों को बहुत अधिक पसन्द आए और उनको फोटो कापी करवा कर डाक के द्वारा अथवा हाथ से उन्होंने और मैंने खूब बाँटा। इन सब लेखों की संख्या लगभग 75 हो गई 2 ही महीने में । इनकी फोटो कापी करवा के मैंने परमगुरु शिवानन्द की कृपा मानते हुए, स्वामी सत्यानंद के चरणों में समर्पित किया और नवम्बर माह में शतचण्डी यज्ञ में स्वामी निरंजन को सादर भेंट किया। शतचण्डी यज्ञ का संपूर्ण सत्संग "मेगा पावर हाउस" फरवरी 2007 की अंग्रेजी (योगा) में छपा । यह मेरी अध्यात्मिक यात्रा का सातवाँ पड़ाव था। फिर अप्रैल की योग विद्या (हिन्दी) में मेरा एक लेख और छपा जिसने मेरे आत्मविश्वास की नींव गहरी कर दी और मैं द्रुतगति से न केवल लिखने लगी अपितु दोनों हाथों से इन लेखों

की प्रतियों को फोटोकापी करवा कर बाँटने लगी।

सन् 2006 के शतचण्डी यज्ञ में मैंने बच्चों को योग सिखाने के लिए कुछ दिशा निर्देश रिखिया पीठाधीश्वरी स्वामी सत्संगी से माँगे। उन्होंने कहा, ''अभी तो समय नहीं है, आप कुछ समय बाद आइए।'' मुझे सन् 2007 की चैत्र नवरात्रि में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरु की असीम अनुकम्पा से 25 दिन के आश्रम प्रवास काल में, मैंने जीवन के एक नए रूप का न केवल दर्शन किया अपितु वहाँ की अनेक शिक्षाओं को अपरोक्ष रूप से आत्मसात किया।

यह मेरी अध्यात्मिक यात्रा का आठवाँ और अत्याधिक महत्वपूर्ण पड़ाव था। स्वामी सत्संगी के स्नेह और ममता के कारण, मैंने पूर्णतया स्वामी सत्यानंद के श्री चरणों में आत्मसमर्पण किया। वहाँ मैंने जीवन का एक नूतन रूप देख जो आत्मनियंत्रण और वैराग्य से परिपूर्ण था। तपस्या ही उनका जीवन है। कर्मयोग अर्थात अपने स्वार्थ को छोड़ कर अनदेखे अनजानों की सेवा करना, उनको प्यार करना और मुक्त हस्त से दान देना रिखिया की एक ऐसी विशेषता है जो कहीं गहरे तक मेरे मन को छू गई। रिखिया में श्री स्वामी जी की छत्रछाया में स्वामी सत्संगी आसपास के गाँवों के लगभग 1500 लड़कियों (कन्याओं) और (लड़को) बटुकों को हर तरह से प्रशिक्षित कर रही हैं। संस्कारों की गहरी नींव के साथ, ये बच्चे उनके कुशल निर्देशन में अंग्रेजी, कम्प्यूटर और संगीत की शिक्षा भी प्राप्त कर रहे हैं। कठिन से कठिन श्लोक भी, ये बच्चे सरलता से आत्मसात करते हुए शुद्ध संस्कृत में गायन करते हैं। इनकी मानसिक चेतना का वृहद विस्तार जो हो गया है। वहाँ रहकर मैंने कठिनाइयों में रहना सीखा। न केवल रहना सीखा अपितु पुष्पित, पल्लवित होना भी गुरु कृपा से प्राप्त किया। वहाँ जो मैंने प्राप्त किया उसको शब्दों में बाँधना नितान्त असम्भव है।

स्वामी सत्संगी और स्वामी निरंजन ने मेरे लेखन को अपनी स्वीकृति दी और मुझे इसे जन–जन में बाँटने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके प्रोत्साहन से, मुझे अपने जीवन के लिए एक निश्चित दिशा मिली। और मैं परमगुरु स्वामी शिवानन्द के ज्ञान यज्ञ में एक बूँद बनने का सौभाग्य प्राप्त कर पाई। यह मेरी अध्यात्मिक यात्रा का नौवाँ और सबसे अधिक महत्वपूर्ण पड़ाव था। घर वापस आकर, मैंने पूरी लगन और मनोयोग से इस परम पुनीत ज्ञान यज्ञ को आगे बढ़ाया। गुरु की असीम अनुकम्पा से अनेक लोगों ने मुझे इस नेक कार्य में तन, मन और धन से सहयोग दिया।

सन् 2008, जनवरी में भिलाई के ज्ञानदर्शन योगाश्रम में मेरी पहली बुकलेट (छोटी पुस्तिका) सत्संग छपी और ज्ञान प्रसाद के रुप में वितरित की गई, श्रीमद् भागवत के भक्ति ज्ञान यज्ञ के समापन अवसर पर। मन के किसी गहरे कोने में मैंने असीम शान्ति और सुख का अनुभव किया, जो अवर्णनीय है। गुरु की असीम कृपा को मैंने अपने रोम–रोम में अनुभव किया। यह मेरी अध्यात्मिक यात्रा का दसवाँ पड़ाव था जिसने मेरे जीवन की दिशा पूर्णतया बदल दी। उसके बाद लगभग $1^1/_2$ माह के अन्तराल में मेरीं 11 पुस्तिकाएँ छपी।

विभिन्न बाधाओं को पार करते–करते मैं बहुत बार हतोत्साहित हुई। कई बार इतनी परेशानियों से घिरी रही कि इस ज्ञान यज्ञ को छोड़ देने का निर्णय भी ले लिया। परंतु सन् 2008, सितम्बर में स्वामी शिवानन्द के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में होने वाले श्रीमद् भागवत सप्ताह में स्वामी सत्संगी और स्वामी निरंजन ने मुझे बाधाओं से न डरने और संघर्ष करते जाने को कहा। उनके प्रोत्साहन से, मैं एक नवीन ऊर्जा से भर उठी। स्वामी निरंजन ने कहा, ''आप सेवा करते जाइए।'' उनके स्नेह ने मुझे अन्दर तक तृप्त कर दिया।

अब बाधाओं से न डरते हुए, मैं इस ज्ञान यज्ञ को आगे बढ़ा रही हूँ और संघर्ष कर रही हूँ। गुरु की असीम कृपा से मुझे मार्ग भी मिल रहा है। कभी–कभी मुझे ऐसा लगता है कि वे हर पल मेरे साथ हैं और वे ही इस वृहद् कार्य की बागडोर संभाले हैं। मैं तो केवल एक कठपुतली हूँ, उनके हाथ की। जब ऐसा भाव दृढ़ करती हूँ तो स्वतः ही उनकी दिव्य ऊर्जा से ओत–प्रोत हो जाती हूँ।

सन् 2009 मई में गुरु की असीम अनुकम्पा से मुझे परम गुरु स्वामी शिवानन्द के ऋषिकेश आश्रम जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आश्रम के अध्यक्ष स्वामी विमलानन्द की नम्रता और सौम्यता ने मुझे अत्याधिक प्रभावित किया। उन्होंने मेरी समस्त पुस्तके पढ़ी और उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए कहा, ''यह काम तुम नहीं कर रही हो। तुम तो केवल यंत्र हो। महापुरुषों की शिक्षाओं का प्रचार करना एक पुण्य कार्य है। ज्ञान से संस्कार बनता है और व्यक्ति का जीवन बदल जाता है।'' वहाँ स्वामी ब्रह्मनिष्ठानन्द ने इन पुस्तकों को आश्रम की लाइब्रेरी में रखा। मैंने कहीं अंदर तक एक गहन संतोष का अनुभव किया। वहाँ के जॅनरल सेक्रेटरी स्वामी पद्नाभानन्द ने स्वामी शिवानन्द की अनेक पुस्तकें मुझे दीं उपहार स्वरूप जिससे मुझे सहज ही स्वामी शिवानन्द की उदारता का स्मरण हो आया। वहाँ जाकर मुझे लगा कि यह मेरी यात्रा का ग्यारहवॉ पड़ाव था। वहाँ संन्यासियों को देख कर मुझे लगा कि ये अनन्त की यात्रा है जिस पर मुझे अनन्त उपहार मिलेंगे। इस अनुभूति (Realization) ने मेरे तन–मन को एक नई ऊर्जा और स्फूर्ति से भर दिया। घर वापस आकर इस सेवा के पुनीत कार्य को मैंने पूर्ण मनोयोग से करने का दृढ़ संकल्प लिया।

साधना में विशेष तीथियों का महत्व

अध्यात्मिक प्रगति के लिए प्रत्येक साधक को विशेष तीथियों का महत्व अवश्यमेव समझना चाहिए। आज के पढ़े लिखे बुद्धिजीवी अक्सर इन बातों को वहम समझते हुए नकार देते हैं। औरों की बात क्या कहूँ, गुरु की शरण में आने के बाद, गुरु कृपा से, अपने अनुभवों से ही मैनें इस तथ्य की सत्यता को पूर्णतया स्वीकार किया। जब मैं नई–नई ज्ञानदर्शन योगाश्रम में अपनी कमर दर्द के निदान के लिए गई (1993 में) तो मैंने देखा कि स्वामी देवशंकरानन्द जी नवरात्रि में दुर्गासप्तशती का पाठ स्वयं भी करते और अनेक साधकों को भी करवाते। मुझे इसमें कोई रुचि नहीं थी अतः मैं अपने शारीरिक

अभ्यास कर के ही वापिस आ जाती थी। परमहंस स्वामी शिवानन्द, सत्यानंद और निरंजनानंद जी के जन्मदिन पर भी केवल जप और ध्यान ही होता था। शुरु में तो मुझे अजीब लगा परन्तु अपने अनुभवों (आन्तरिक शान्ति, प्रसन्नता और ऊर्जा) से मुझे इसका महत्व स्पष्टतः समझ आने लगा। नवरात्रि में हल्का भोजन लेने अथवा उपवास रखनें से अतिशय लाभ होता है। उपवास में गरिष्ठ पदार्थों का सेवन न करें।

स्वामी शिवानन्द ने एकादशी को बहुत महत्व दिया और समस्त साधकों से इस रोज उपवास रखने का आवाहन किया। उन्होंने लिखा ''यदि कोई व्यक्ति स्वास्थ्य के कारण उपवास नहीं रख सकता तो दूध और फल ग्रहण करे। चन्द्रमा की किरणें इस दिन विशेष कोण बनाती हैं जो अध्यात्मिक प्रगति के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस एक दिन उपवास रखने से ही भक्ति का दिव्य उपहार मिल सकता है और स्वास्थ्य लाभ भी होता है। एकादशी के दिन गीता पाठ करने से विशेष लाभ होता है।'' पूर्णिमा और अमावस्या के दिन भी अधिक समय पूजा पाठ और भगवद् सिमरन में व्यतीत करने से अतिशय लाभ होता है।

अनेक संतों ने अपने अनुभवों से हमारा मार्गदर्शन किया है। द्रुतगति से प्रगति करने के लिए प्रत्येक साधक को काम, क्रोध, लोभ मोह, मद और आसक्ति को धीरे धीरे कम करते हुए, सन्तों की इन सरल शिक्षाओं को अपनाना चाहिए। आरम्भ में आवश्यकता है थोड़े से विश्वास की और धैर्य की। संसार में कोई भी कार्यकलाप जैसे व्यापार अथवा नौकरी में व्यक्ति को विश्वास, धैर्य और पुरुषार्थ अतिआवश्यक है।, फिर ये तो प्रभु प्राप्ति का मार्ग है जिस पर सुख, शान्ति और प्रसन्नता व्यक्ति की झोली में आने के लिए तत्पर हैं। जागो और अपने जीवन की बागडोर अपने हाथ में संभालो, ऐसा न हो कहीं देर हो जाए और काल का बुलावा आ जाए, जीवन व्यर्थ ही चला जाए।

यह है अध्यात्म

चलते–चलते इस राह पर कभी थक जाती हूँ, कभी गिर जाती हूँ, हतोत्साहित हो बैठती हूँ।
हार बैठती हूँ हिम्मत और बाधाओं से घबराते हुए इस राह को छोड़ने का संकल्प भी ले लेती हूँ। पर अब दुनिया में वह मजा आता नहीं जो अपने अन्दर में पाती हूँ। गिरने, ठोकर खाने के बावजूद जो मजा बन्दगी में है वह और कहीं पाती नहीं हूँ।
दुनिया में डूबती हूँ तो संसार की निरर्थकता को सरलता से देख पाती हूँ।
फिर कैसे आए मजा इन नकली सुख उपभोग के साधनों में।
जब प्रभु ने भेजा है भर के मुझको सुखों की खान से।
ठोकरों के बावजूद, बाधाओं के बावजूद, अब इसी राह पर चलता चाहती हूँ।
हटती हूँ कुछ समय के लिए, फिर पुनः उसी में वापिस जाना चाहती हूँ। कैसी है ये कशिश।
कैसा ये आकर्षण। अपने अनुभवों से खुद ही हैरान हो जाती हूँ।

नहीं डर लगता मुझे अब बाधाओं से, क्योंकि उनको मैं अब अपनी प्रगति का सोपान समझती हूँ।
हर बाधा को पार करने के पश्चात् एक नूतन शक्ति का अहसास अपने अन्दर करती हूँ।
पाकर उस शक्ति को मैं सहज ही मालामाल हो जाती हूँ।
यही है रहस्य प्रगति का। यही है रहस्य आनन्द का। सतत आनन्द प्राप्त करने के लिए अब सदा सीखते ही रहना चाहती हूँ।
सतत आनन्द प्राप्त करने के लिए अब दोनों हाथों से बाधाओं का स्वागत करती हूँ।
ये है अध्यात्म। अनन्त सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करने का मार्ग।
इस मार्ग पर ही अब मैं सतत चलना चाहती हूँ।

अध्यात्म की राह

अध्यात्म की राह पर चलते–चलते, किए अनेकों अनुभव एकत्र अपनी झोली में।
अध्यात्म की राह पर चलते–चलते, सीखा मैंने मुश्किलों में मुस्कराना।
मुश्किलों में मुस्कराना और हँसते–हँसते बहादुरी से उनका सामना करना।
हँसते–हँसते बहादुरी से उनका सामना करना और राह के काँटों को फूलों में परिवर्तित करना।
स्वामी सत्यानंद कहते हैं कि ईश्वर से नित्य प्रतिदिन अपने लिए दुःख और मुसीबतें माँगों।
क्यों ? हम तो जब भी भगवान से माँगते हैं तो अपने लिए सुख ही माँगते हैं।
स्वामी सत्यानन्द का कहना है कि दुःख हमें बुद्धिमान बनाते हैं, हमें मजबूत बनाते हैं।
उनकी इस शिक्षा को पढ़ते–पढते, मनन चिन्तन करते–करते, अपने अनुभवों से मैंने जाना कि यह शतप्रतिशत सही है।
जब–जब जीवन में दुःख आता है मैं अपनी पूरी शक्ति लगा कर उसका सामना करती हूँ। और न केवल सामना करती हूँ अपितु उसको पार करने के बाद एक नूतन शक्ति का अहसास अपने भीतर करती हूँ। नहीं लगता डर मुझे अब बाधाओं से क्योंकि उन्हें अपनी सफलता का सोपान अब मैं समझती हूँ। भाग जाती है बाधा डर के मुझ से, दे जाती हैं एक नूतन शक्ति मुझे।
मिल रहा है विवेक का उपहार मुझे नित प्रतिदिन बाधाओं के आने से।
बन रहा है जीवन मेरा समृद्ध अध्यात्म के मार्ग पर चलने से।
भर रही हूँ एक असीम सुख और शान्ति से नित प्रतिदिन।
फिर क्यों न मैं इस राह को ही चुँनू जिस पर मुझे आनन्द ही आनन्द मिलता है।
भर रहा है जीवन एक दिव्य प्रेम और शान्ति से बाधाओं के बावजूद।
छूट रही है चिन्ताएँ। छूट रहे हैं क्लेश। छूट रही हैं वासनाएँ। छूट रही हैं तृष्णाएँ

बन रहे हैं पंख मेरे मजबूत, उड़ रही हूँ निरभ्र आकाश में बन के एक तितली पुनः जैसी बचपन में थी ।

आनन्द ले रही हूँ उस निश्छलता का जो पहले मेरे स्वभाव का एक सहज अंग थी ।

चाहती हूँ सब इस राह पर चलें और अपना जीवन उज्ज्वल और धवल बनाएँ ।

करें सेवा निष्काम । बने उदार, दिल से लुटाएँ सम्पदा जरुरत मंदों और गरीबों पर ।

जीवन बनेगा एक उत्सव जिसमें हर पल आनन्द और केवल आनन्द ही होगा । फिर कहाँ का दुःख ? और कहाँ का विषाद ?

मर कर भी मानव अमर होगा । मामूली बाधाओं से न डरेगा ।

अपने साथ–साथ अनेकों का उद्धार करेगा और इसी धरा पर स्वर्ग का अनुभव करेगा ।

कितना कँटीला है यह पथ अध्यात्म का !

कितना कँटीला है यह पथ अध्यात्म का, ये तो वह ही जाने जो इस पथ का पथिक बनता है ।

हैं पग–पग पर कैक्टस इच्छाओं और तृष्णाओं के जो पथिक को गहरे तक बींध देते हैं ।

हैं पग–पग पर काँटे मोह और आसक्ति के जो पथिक को उसके निश्चित लक्ष्य से डिगा देते हैं

हैं पग–पग पर मगरमच्छ छली और कपटी व्यक्तियों के जो पथिक को दबोच लेना चाहते हैं । आसान नहीं है ये पथ गर एक दैवी शक्ति साथ न हो ।

साथ मिलता है ईश्वर की शक्ति का पग–पग पर गर व्यक्ति शरणागति ग्रहण करता है ।

एक सद्गुरु के आने से, उन पर विश्वास करने से, ये पथ सुगम हो जाता है ।

पकड़ लेते हैं हाथ सद्गुरु पथिक का और काँटों से उसके बचाते हैं ।

उठा लेते हैं सद्गुरु पथिक को अपनी स्नेहमयी गोद में और अपनी शक्ति से राह की बाधाओं को दूर करते हैं ।

जो पथिक सच्चाई और ईमानदारी से इस राह पर चलना चाहता हैं, ईश्वर स्वतः ही एक सद्गुरु को उसके पास भेज देते हैं ।

सद्गुरु की शक्ति से साधक सीखता है पथ के काँटों को हटाना ।

न केवल सीखता है काँटों को हटाना अपितु उस राह पर सेवा, प्यार के फूल भी खिलाता है ।

खिलते हैं फूल जब सेवा, प्यार के, एक दिव्य प्रसन्नता से पथिक का अन्तर्मन भर जाता है।

उन फूलों की सुगन्ध से सुवासित होता है विश्व और पथिक एक मार्गदर्शक बनता है ।

करता है वह उद्धार अनेकों का और ईश्वर की कृपा बहुतायत में प्राप्त करता है ।

बनते हैं काँटे भी तब फूल उसके लिए क्योंकि उन्हें अपनी प्रगति का सोपान वह समझता है ।

बदलती है नज़र तो नज़ारे बदल जाते हैं। हर इंसान में तब वह ईश्वर का रूप देख पाता है।

भर जाता है असीम आनन्द, सुख, शान्ति से यद्यपि काँटों के शूल अभी भी उसके पाँव में गड़ते हैं ।

करते हैं लहूलूहान ये काँटे उसको पर उनके दंश से वह बच जाता है ।

बढ़ाता है सहनशक्ति अपनी, जब पग–पग पर काँटों के शूल सहता है। और इस तरह धीरे–धीरे प्रभु के और नज़दीक खिसकता है। कृपा के रसीले फल खाते–खाते उसका अन्तर्मन एक दिव्य आनन्द से भर जाता है ।

नहीं करता वह परवाह इस राह की दुर्गमता की, क्योंकि अनन्त सुख, शान्ति और प्रसन्नता वह प्राप्त करता है अन्तर्मन की ।

संघर्ष और प्रगति

संघर्ष ही जीवन में प्रगति का द्योतक है । गर संघर्ष न होगा, तो मानव आगे नहीं बढ़ पाएगा । संघर्ष के अभाव में व्यक्ति आलसी हो जाता है । संघर्ष के अभाव में कहीं न कहीं अन्तर में अहंकार का आगमन होता है ।

जब संघर्ष आता है, तभी मानव उस ईश्वर की सत्ता का अस्तित्व मानने पर बाध्य होता है ।

संघर्ष के समय जो करता है ईश्वरीय ऊर्जा का आवाहन वहीं व्यक्ति न केवल संघर्ष को पार करता है अपितु उस संघर्ष से सीखते हुए शक्तिशाली भी बनता है ।

संघर्ष है सोपान प्रगति का। संघर्ष करता है प्रशस्त मार्ग प्रगति का। चढ़ता है व्यक्ति एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर, जब संघर्ष के द्वारा परिस्थितियों से उबर पाता है । बढ़ता है आत्मविश्वास उसका और अनेकों आशीर्वाद अपनी झोली में इकट्ठे करता है ।

ईश्वर भी उन्ही की मदद करते हैं जो स्वयं अपनी मदद करते हैं ।

आखिर रोने पर ही तो माँ भी बच्चे को दूध पिलाती है । जो संघर्ष से डरता है वह जीवन में पीछे ही रह जाता है ।

अतः संघर्ष का डट कर सामना करो । संघर्ष का स्वागत करो। संघर्ष से मत डरो । जो डर गया सो मर गया ।

हर मानव के अन्दर है छिपी शक्ति उस सर्वनियंता की । चाहे तो वह समस्त बाधाओं को लाँघ सकता है । अपनी शक्ति को पहचानो । अपने अन्तर से जुड़ो । एक अच्छे कार्य के लिए, प्रभु स्वयं दौड़े चले आते हैं । उठाते हैं परोपकारी और निःस्वार्थी को अपनी गोद में । और उसकी राह के समस्ते काँटे अपने हाथों से उठाते हैं ।

करो परमार्थ, उसमें संघर्ष से मत डरो ।

करो सेवा, निष्काम, निस्वार्थ । उसमें संघर्ष से मत डरो । जितना संघर्ष करोगे, उतनी ही अधिक प्रभु की कृपा प्राप्त करोगे ।

गर विश्वास न हो तो कर के देख लो । अपने अनुभव से ही मेरे कथन की सत्यता को परखो।

एक नए मन का निर्माण

मन आखिर क्या है ? स्वामी शिवानन्द ने लिखा है कि मन एक विचारों का समूह है । जब तक विचार हैं तब तक मन का अस्तित्व है । विचार शून्य हो जाने पर मन समूल नष्ट हो जाता है । विचार शून्यता चेतना की वह उच्च अवस्था है जब व्यक्ति को केवल और केवल अपने निज स्वरूप का अहसास रहता है । ऐसा व्यक्ति देह के अभिमान से उपर उठ जाता है। परंतु साधारण मनुष्य के लिए तो ये सब कोरी कल्पनाएँ ही है क्योंकि विचार उसके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं ।

अतः मनीषियों ने कहा कि तुम इन विचारों को ही उत्तम स्तर पर ले कर जाओ । जो विचार घृणा, ईर्ष्या, नफरत, लड़ाई, झगड़ें जो जन्म देते हैं वो विचार व्यक्ति को क्रोध, चिन्ता, निराशा और विषाद का उपहार अपरोक्ष रूप में देते हैं। जो विचार सत्य, प्रेम, अहिंसा, सेवा, प्यार और दान से ओत–प्रोत होते हैं वो व्यक्ति की आंतरिक शुद्धि करते हुए, उसे अपने अन्दर के ईश्वर का अहसास करवाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

एक ही विचार को बार–बार दोहराने से वह मन के अंदर गहरे में रोपित होकर एक संस्कार का रूप धारण करता है। प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् अपने संस्कारों की गठरी ले कर एक मृत शरीर से दूसरे नूतन शरीर में प्रवेश करता है। स्वामी निरंजन ने लिखा है कि ''जिस प्रकार व्यक्ति अपना सामान एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाता है, उसी प्रकार आत्मा के साथ उसके संस्कारों की पोटली भी जाती है।'' अतः विचार न केवल हमारा वर्तमान अपितु भविष्य बनाने में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

हम जैसा विचार करते हैं, वैसे ही हमारा व्यक्तित्व बनता है और कर्म भी उनके अनुरूप ही होने लगते हैं । उदाहरणतया एक डाक्टर निरन्तर दवाईयों रोगियों और रोग का ही चिन्तन करता है । एक चोर के मन मन में चोरी के ही विचार निरन्तर चलते हैं। एक माँ के विचार अपने बच्चे के इर्द–गिर्द ही घूमते रहते हैं । यदि जीवन में आनन्द प्राप्त करना है तो हमे आनन्द, प्रसन्नता और दूसरों को कुछ देने के विचारों को प्रधानता देनी होगी । जब हम निरंतर अच्छे साहित्य का अध्ययन करते हैं और उसका मनन चिंतन करते हैं तो हमारे अंदर उत्तम विचारों की जड़े गहरी होने लगती हैं । संस्कार दिव्य होने लगते हैं । निःस्वार्थ सेवा करने से कुविचारों का समूल नाश स्वतः होने लगता है । स्वामी शिवानन्द ने इसी को शुद्धि बताया है। शनैः–शनैः एक उच्च मन का निर्माण होता है । आसन, प्राणायाम, जप और ध्यान नियमित रूप ये करने से ये (Process) प्रक्रिया और भी तीव्र हो जाती है । और तब होता है एक नए मन का निर्माण जो केवल परमार्थ का ही चिन्तन करता है । उस व्यक्ति का हृदय दया, करुणा और सेवा के भाव से परिपूर्ण हो जाता है । ऐसे व्यक्ति पर संतों और प्रभु की अतिशय कृपा बरसती है और जीवन में सफलता उसके कदम चूमने लगती है । ऐसा व्यक्ति सुख, शांति, प्रसन्नता का सतत अनुभव अपने अंदर में करता है ।

संसार में रहते हुए भी वह मोक्ष का अनुभव करता है क्योंकि प्रभु कृपा से उसके समस्त बन्धन खुल जाते हैं ।

तो आओ एक नए मन का निर्माण करें । एक ऐसा मन जो दूसरों की भलाई को प्राथमिकता दे। एक ऐसा मन जो अपने बारे में कम सोचे और दूसरों के भले के बारे में अधिक सोचे। जब हम ऐसा कर पाएँगे तो कोई भी दुःख, परेशानी, चिंता हमको छू नहीं पाएगी । भरोसा करना है तो एक प्रयोग करो और अपने अनुभव से मेरे कथन की सत्यता को परखो ।

अध्यात्म की परिणति

जीवन में अध्यात्म है ऐसे, बगीचे में माली हो जैसे ।
जब व्यक्ति अध्यात्म के मार्ग पर चलता है तो
अपने जीवन के काँटे खुद अपने हाथों से चुन कर निकालता है ।
जब व्यक्ति अध्यात्म के मार्ग पर चलता है तो अपने जीवन के जंगली,
अवगुणों के रूप में स्वयं पहचान पाता है ।
जब व्यक्ति अध्यात्म के मार्ग पर चलता है तो
अपने जीवन की बगिया में सद्गुणों के फूल खिलाने के लिए सद्विचारों के बीज बोता है ।
करता है प्रयत्न निरंतर और सतत अपने काम क्रोध से मुक्ति पाने के लिए ।
काम, क्रोध, मद, मोह और आसक्ति ही हैं व्यक्ति के अन्दर गहरे दबे हुए जंगली पौधे।
अध्यात्म के मार्ग पर चलते–चलते, धीरे–धीरे जैसे–जैसे व्यक्ति सद्गुणो के फूलों की फसल बढ़ाता है, जंगली पौधों के लिए स्थान कम रह जाता है ।
जैसे ही ये विचार पनपने लगते हैं, सिर उठाते हैं, विवेक की खुरपी से व्यक्ति इनको बार–बार जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न करता है ।
मिलते हैं जब उसे फल मीठे–मीठे सत्कर्मों के तो ये जंगली पौधे स्वतः ही कमजोर पड़ने लगते हैं।
जान पाता है व्यक्ति अपने सद्गुणों की ताकत और सद्विचारों का महत्व ।
स्वाध्याय करते–करते वह स्वतः ही सद्विचारों से अपने बगीचे को भर देता है ।
जब न मिलता है स्थान अवगुणों को तो वे स्वतः ही व्यक्ति का पीछा छोड़ देते हैं ।
रास्ता लम्बा सही पर यह सुनिश्चित रूप से सुख, शान्ति और प्रसन्नता दिलाता हे । आखिर व्यक्ति जीवन में सुख, शान्ति और प्रसन्नता ही तो चाहता है, नहीं क्या ?कोई भी धर्म हो, कोई भी देश हो, हे मानव ! तू अच्छा बन और अच्छा कर ।
जब तू स्वार्थ के दायरे को तोड़ेगा तो स्वयं ही दूसरों की निःस्वार्थ भाव से मदद करेगा ।

दूसरों की निःस्वार्थ भाव से मदद करना ही तो अध्यात्म है ।

बिना किसी अपेक्षा के, कर्म फल की आसक्ति का त्याग करके जब व्यक्ति कर्म करता है तो उसका अनन्त फल स्वतः ही सुख, शान्ति, प्रसन्नता और आनन्द के रूप में उसकी झोली में आ गिरता है ।

क्या पाया मैंने अध्यात्म से ?

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने पाया प्रभु को ।

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने जाना प्रभु के अनुभव को ।

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने पाया उस असीम आनन्द और सुख को जो मेरा सहज स्वभाव था ।

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने जाना अपने आत्म स्वरूप अर्थात् अपने अंदर के रूप को ।

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने सीखा केवल और केवल सच बोालना ।

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने सीखा कि सच बोलने से कितना गहन आनंद मिलता है ।

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने सीखा कि संतोष ही जीवन का सबसे बड़ा धन है ।

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने सीखा ईश्वर पर अथाह विश्वास करना ।

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने सीखा कि ईश्वर ही केवल एक कर्त्ता है ।

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने सीखा कि ईश्वर की रज़ा में रहने से ही मज़ा है ।

अध्यात्म की डगर पर चलते–चलते मैंने सीखा कि ईश्वर पर सब काम छोड़ देने से असीम सुख और शान्ति मिलती है ।

अध्यात्म की डगर आखिर है क्या ?

अध्यात्म की डगर है बुराई से अच्छाई की ओर जाने का मार्ग ।

अध्यात्म की डगर है झूठ से सच की ओर जाने का मार्ग ।

अध्यात्म की डगर है स्वार्थ से निःस्वार्थ भाव की ओर जाने का मार्ग ।

अध्यात्म की डगर है निःस्वार्थ, निष्काम सेवा का मार्ग ।

अध्यात्म की डगर है दूसरों पर दया और करुणा करने का मार्ग ।

अध्यात्म की डगर है दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझने का मार्ग ।

है यह एक अद्वितीय डगर। है यह एक अनमोल डगर। है यह आखिरी रास्ता जिस पर हर मानव को चलना है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है ।

यह डगर है अनन्त जिस पर हर किसी को जन्मों तक यात्रा करनी है ।

जन्मों तक यात्रा करनी है और अन्त में उस सर्वनियंता की गोद हासिल करनी है ।

उस सर्वनियंता की गोद में ही मिलेगा उसे वह सुख और शान्ति जिसकी उसे तलाश है

जन्मों से ।तो आओ हम सब इस मार्ग के पथिक बने ! अपने जीवन को बुराई से अच्छाई की ओर मोड़ें और अनन्त सुख प्राप्त करें ।

जी करता है उड़ूँ मुक्त गगन में

छूट रही है आसक्ति धीरे–धीरे । कट रहे हैं मोह के बंधन धीरे–धीरे ।

गुरु के वाक्यों का पालन करने से, अपने जीवन में उतारने से बढ़ रही है शान्ति धीरे–धीरे ।

गुरु की शिक्षाओं को अपने व्यवहार का अंग बनाने से बढ़ रही है प्रसन्नता धीरे–धीरे ।

जी करता है अब उड़ूँ मुक्त गगन में एक पक्षी बन के, नापूँ आकाश की असीम ऊँचाइयों को ।

नापते हुए आकाश की असीम ऊँचाइयों को फैलाऊँ, गुरु की शिक्षाओं को विश्व के एक कोने से दूसरे कोने में ।

क्यों ? क्योंकि मैं चाहती हूँ हर मानव स्वतंत्र हो । हर मानव पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त हो । हर मानव अपने सहज स्वभाव को जाने, पहचाने ।

हर मानव जाने कि उसका सहज स्वरूप एक दिव्य आत्मा है । एक दिव्य आत्मा जो कभी मरती नहीं, जन्मती नहीं ।

उस आत्मा को कोई मार नहीं सकता । फिर क्यों मानव डरता है इतना आज ?

उस आत्मा को कोई रोग छू नहीं सकता । फिर क्यों मानव आज रोग और रोग जनित भय से जूझता रहता है ? आज डूबता है मानव विषाद की गहरी खाई में और लेता है शरण मनोचिकित्सकों और अनेक दवाइयों की

डूबता है मानव आज दुःख के गहरे कुँए में और लेता है शरण अनेक ढोंगी साधु सन्तों की ।

खोता है विश्वास अपना जीवन पर से और जीवन बनाने वाले पर से ।

हो जाता है निराधार इस परमसत्ता के होते हुए भी चाहे कहें उसे राम, ईसा या अल्लाह ।

पालन कर पाएगा जिस रोज शिक्षाएँ सच्चे सन्तों की, कर पाएगा जिस रोज प्यार अन्तर्मन से हर मानव को, खोल पाएगा द्वार जिस रोज अपने दिल के और बाँटेगा जो कुछ भी है उसके पास दूसरों के साथ ;अपने परिवार के अतिरिक्त

कटेंगी सब बेड़ियाँ उसके दुःख, चिंता, निराशा और विषाद की ।

पाएगा मुक्ति वह रोग के रहते भी उससे सम्बन्धित अनेक समस्याओं से ।

छूटेगा भय उसका । बनेगा वह निडर और समर्थ कर पाएगा मुकाबला हर किसी समस्या का पूरी आत्मशक्ति से और पुकारेगा उस परमसत्ता को पूर्ण विश्वास से ।अपने अनुभव से ही होगा उसका निस्तार । पर हिम्मत तो उसे करनी ही होगी ।

अपनी जीवन शैली थोड़ी तो बदलनी ही होगी अपने कल्याण के लिए ।

एक सद्गुरु की शरण ग्रहण करनी ही होगी ।

शरण लेने के पश्चात् उनकी शिक्षाओं को सच की कसौटी पर परखना ही होगा ।

अपने अनुभवों से अपने जीवन की दिशा बदलनी ही होगी, गर उसको पानी है सुख, शान्ति

और प्रसन्नता।
गर उसे करना है अनुभव अपने अंदर के ईश्वर का ।
गर उसे पानी है मुक्ति इसी धरा पर जीते जी ही ।

मैं क्या चाहती हूँ आज ?

मैं चाहती हूँ आज कि मैं अपने गुरु स्वामी सत्यानंद का एक यंत्र बनूँ ।
एक यंत्र बनूँ और इस जीवन का समर्पण उनके श्रीचरणों में करुँ ?
क्यों ? क्योंकि मुझे उनमें भगवान का एक ऐसा रूप दिखता है जो केवल और केवल मेरा ही भला चाहता है ।
क्योंकि मुझे उनकी शिक्षाओं के पालन करने से आन्तरिक गहन शांति मिलती है ।
क्योंकि प्रयोग करने से उनकी शिक्षाएँ मेरे जीवन में शतप्रतिशत सही उतरती हैं ।
उनका एक–एक शब्द ब्रह्मवाक्य मुझे अब लगता है अपने अनुभव से न कि उनके कथन से ।
उनके चरित्र से मुझे एक दिव्य प्रेरणा मिलती है अपना जीवन संवारने की, सजाने की और निखारने की ।
मैं चाहती हूँ कि अब वे रथी बनें मेरे इस जीवन रूपी रथ के ।
देकर बागडोर इस जीवन की अब उनके समर्थ हाथों में, निश्चिंत मैं हो जाना चाहती हूँ ।
दुनिया चाहे जो भी कहे, मैं जानती हूँ मैं क्या कह रही हूँ। मैं क्या कर रही हूँ।
यह मेरा जीवन है, इसके फैसले अब मैं खुद लेना चाहती हूँ।

मेरी दृष्टा बनने की यात्रा (सत्य कथा)

द्रष्टा शब्द का अर्थ है देखने वाला । देखने वाला अर्थात् केवल आँख से देखने वाला । मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से एकदम पृथक। 5 वर्ष पूर्व जब अपनी कुछ अध्यात्मिक शंकाओं का समाधान करने के लिए, परमहंस स्वामी निरजनानंद सरस्वती जी को पत्र लिखा; तो जवाब में मुझे एक वाक्य में 'द्रष्टा बन कर साक्षी भाव से सबको देखते चलो।' उत्तर आया। ईमानदारी से कहूँ तो पढ़ कर मुझे बहुत निराशा हुई। मैंने अनेक शंकाएँ लिखीं थी, जिनका समाधान तो स्वामी जी ने किया नहीं; और शिक्षा भी ऐसी भेजी जिसका ओर–छोर मुझे समझ में नहीं आया। खैर संतोष किया! और करती भी क्या ? सामने तो थे नहीं जो पूछती कि इसको कहाँ से आरंभ करूँ ? उन्हीं की कृपा से जो भी समझ में आया, नियमित जप, आसन और प्राणायम करती रही। सेवा के प्रत्येक अवसर को निष्काम भाव से करने की कोशिश करती रही।
समय अपनी गति से बीतता गया। जीवन के विभिन्न मोड़ों पर प्रसाद के रूप में छोटी–छोटी उपलब्धियों को अपनी झोली में मैंने समेटा । अनेक पुस्तकें पढ़ते, उनकी, श्री स्वामी जी की, स्वामी शिवानंद की कई शिक्षाओं का मनन चिंतन करते; उन्हें अभ्यास में लाते; समय कब पंख लगा कर उड़ गया, पता ही नहीं चला । श्री स्वामी जी की असीम कृपा से सन्

2007 की चैत्र नवरात्रि के उत्सव में भाग लेने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ । अनेक सत्संगों में श्री स्वामी जी की शिक्षाओं के गहन अर्थ धीरे–धीरे समझ आने लगे ।
गुरु की कृपा का अर्थ भी एक हद तक स्पष्ट होने लगा । और इस डगर पर चलते–चलते कब मुझे स्वामी शिवानंद की शिक्षाएँ भी एकदम स्पष्ट समझ आने लगीं, कह नहीं सकती । परन्तु उनके द्वारा प्रदत्त नियमों को ईमानदारी से पालन करते–करते, अचानक संसार के असली रंग मुझे समझ आने लगे । संसार में यह सब सुख, दुःख, निराशा, आशा, हार, जीत ऐसे ही चलेगी । फिर कैसा राग और कैसा द्वेष ? ईश्वर ही नियंता है ! उसकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता ! इस बात की गइराई को भी अब थोड़ा–थोड़ा समझ पा रही हूँ।
कठिन परिस्थितियाँ मेरे मनोबल को बढ़ाते हुए, मेरी पथ प्रदर्शक बन रही हैं । अब मुझे उनसे भय लगने की बजाय; आनन्द आने लगा है । प्रत्येक परिस्थिति का सकारात्मक पक्ष मैं सरलता से देख पा रही हूँ। तनाव भी एक हद तक कम हो गया है। कैसा तनाव ? और क्यों ? जब मेरे हाथ में कुछ है ही नहीं तो फिर किससे डरुँ? और क्यों ? अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, जीवन एक असीम सुख और शान्ति से भर उठा है। कभी–कभी सोचती हूँ कि स्वामी जी को तो बिल्कुल कुछ भी महसूस नहीं होता होगा ? खैर वह सब मेरी बुद्धि की सीमा से बहुत परे की बात है । पर अब इच्छा होती है कामना का त्याग करने की ! सब कुछ करते हुए भी निर्लिप्त रहने की ! स्वयं को मुक्त रखने की ! गुरु अनुकम्पा के बहाव में स्वयं को बहने देने की ! और यही मोक्ष नहीं है क्या ?

असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता

तजो मोह मद और अभिमान, पाओ सुख, शान्ति और प्रसन्नता अपार ।
तजो काम, क्रोध और मोह, पाओ सुख, शान्ति और प्रसन्नता अपार ।
सुख, शान्ति और प्रसन्नता तो तेरे चारों ओर व्याप्त है।
हे मानव । तू ही अनजान है । तू ही इससे अनभिज्ञ है।
जिस रोज जान जाएगा। अपने को पहचान जाएगा। होगा तेरा जीवन उज्ज्वल, धवल, निर्मल और कोमल।
होगा ज्ञान उदय जब तेरे अंतर में, बाहर की दुनिया में कुछ रखा नहीं है समझ जाएगा ।
यहीं से लिया । यहीं छोड़ कर जाना है । फिर किस बात का कलह और क्लेश करना है ।
कलह और क्लेश ले जाते हैं तुझे इस प्रभु से दूर ।
कलह और क्लेश ले जाते हैं तुझे अपने आप से दूर ।
नहीं सुन पाता तू अपने अंदर की आवाज । नहीं देख पाता तू उस ईश्वर को अपने चारो ओर है वह विद्यमान अपनी हर एक कृति में । है वह विद्यमान हर एक जड़ और चेतन में ।
फिर तू क्यों ढूँढता है उसको मन्दिरों, गिरिजाघरों और गुरुद्वारों में ?
वो सुख, शान्ति और प्रसन्नता का खजाना तो तेरे अंदर ही है ।

जिस रोज उसकी एक झलक तू पा जाएगा तेरा जीवन ही बदल जाएगा ।
बदलेगी तेरी चाल । बदलेंगे तेरे सब हाल । फिर कहाँ का दुःख ? और कहाँ का विषाद ?
ये मैं अनुभव की बात लिखती हूँ । केवल पढ़ी–लिखी नहीं ।
सोचना तुझे है, पाना तुझे है । गर साहसी बन पाएगा तो इसी धरा पर असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त कर पाएगा ।

एक पत्र शिवानन्द आश्रम से

ॐ

परम श्रद्धेया दीदी, चरणों में सादर प्रणाम !

ॐ नमो नारायणाय । ॐ नमो भगवते शिवानंदाय ।

मैं शिवानन्द आश्रम के पुस्तकालय में सेवा करती हूँ। जैसे ही आपकी छोटी–छोटी पुस्तकें मिलीं, मैं एक–एक करके पढ़ती चली गई । बहुत ही प्रेरणादायक हैं ।

मैं बीकानेर (राजस्थान) में सीनियर सेकेण्डरी सरकारी स्कूल में विकलांग एकीकृत शिक्षा में अध्यापन कार्य करती थी । लगभग दो वर्ष से शिवानन्द आश्रम में रह रही हूँ । मैं आस्टियो आर्थराइटिस की रोगी हूँ । मेरी उम्र 62 वर्ष है । डॉक्टर कहते हैं घुटनों में इंजेक्शन लगवाओ, अगर आराम नहीं आया तो ऑपरेशन करवाना पड़ेगा ।

मेरा पूरा जीवन साधनारत रहा है । 16 वर्ष की उम्र से नियमित आसन और प्राणायाम कर रही हूँ । अनेकों एलोपैथिक, आयुर्वेदिक और होम्योपैथिक दवाइयाँ ले चुकी हूँ, ले रही हूँ, पर आराम नहीं आ रहा । आपके लेख ''पहिया कुर्सी से योग शिक्षिका'' ने मुझे बहुत प्रेरित किया । फ़िजियोथैरेपी डॉक्टर ने जितने अभ्यास (Exersices) बताए हैं, सब दिन में दो बार कर रही हूँ । आपने कई लागों को जीने की राह बताई है, कृपया मुझे क्या करना चाहिए ? परामर्श दीजिए ।

शिवानन्द आश्रम
18.09.2009

गुरु चरणाव्रिता
कुमारी पुष्पा खतूरिया
13, नारायण कुटीर
दिव्य जीवन संघ,
शिवानन्द नगर–249192
(उत्तराखण्ड)

बिहार योग विद्यालय
गंगादर्शन, मुगेर 811201
दिनांक : 17.08.2004

आत्मस्वरूप,
हरि ऊँ

आपका पत्र मिला ।
साधना के अनुभवों से प्रभावित नहीं होना चाहिए । और न उनसे बन्धना है । केवल साक्षी भाव से देखते जाइए । अभी बहुत लम्बी दूरी तय करनी है ।

पूज्य स्वामीजी के मंगल आशीष आपके साथ हैं ।

शुभकामनाओं के साथ–

ऊँ तत्सत्

दानदाताओं की सूची

नाम		रु.	नाम		रु.
अनिता नरुला	:	500/–	मधु सोनी	:	250/–
ऊषा	:	500/–	इंद्रनील	:	500:–
श्रीमती सरदाना	:	200/–	प्रमिला	:	600/–
गोस्वामी जी	:	100/–	अरुणा अग्रवाल	:	1000/–
टी.एम. गोपाल	:	1000/–	अदित अग्रवाल	:	2000/–
प्रीति अग्रवाल	:	2000/–	अभिनव अग्रवाल	:	10000/–